कोल

मध्यप्रदेश की कोल जनजाति का सांस्कृतिक अध्ययन

बाबूलाल दाहिया

कोल

मध्यप्रदेश की कोल जनजाति का सांस्कृतिक अध्ययन

प्रधान संपादक
धर्मेन्द्र पारे

संपादक
अशोक मिश्र

विनिबंध
बाबूलाल दाहिया

जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक
निदेशक
जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल
(मध्यप्रदेश, भारत)
+91-0755-2661640, 2661948

mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum13@gmail.com
web: mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष - **2024**

मूल्य - रू. **300/- (रुपये तीन सौ केवल)**

स्वत्वाधिकार - जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

डिजाइनर - हितेन्द्र तिवारी

मुद्रण - मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

छायांकन - सर्वेक्षणकर्ता एवं अन्य स्रोत, सभी के प्रति आभार

- पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में प्रकाशित सामग्री संकलनकर्ता-लेखक की अपनी है,आवश्यक नहीं है कि अकादमी इससे सहमत हो।
- पुस्तक में छपी सामग्री के किसी भी माध्यम द्वारा उपयोग के पूर्व अकादमी से अनुमति लेना आवश्यक होगा।

ISBN - **978-939-214-875-0**

मध्यप्रदेश की जनजातियों के सांस्कृतिक अध्ययन का कार्य लगभग 25-30 वर्षों पूर्व इस अकादमी ने ही किया है। उस समय **'मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्'** इसका नाम था। जनजातीय जीवन, संस्कृति और उसकी कला परम्परा में इस लम्बे अंतराल में क्या परिवर्तन/परिवर्द्धन और परिष्कार हुआ है, यह जानना इस अध्ययन का मूल लक्ष्य है।

मध्यप्रदेश का जनजातीय संसार विस्तृत और पर्याप्त विविधता लिये हुए है। जनजातीय जीवन में कई समानताएँ हैं, जो यह प्रमाणित करती हैं कि विश्वास, धारणा और प्रकृति में मूलत: ऐक्य है। वहीं थोड़ा-सा धरातली अध्ययन यह साबित करने के लिए भी पर्याप्त है कि परम्परा, कला-बोध और सांस्कृतिक वैविध्य इन समुदायों की विशिष्टता है। इन विनिबंधों के प्रकाशन से इस क्षेत्र में कार्यरत उत्सुक शोधार्थियों, समाज विज्ञानियों, नृतत्त्वशास्त्रियों को भी जनजातीय जीवन की विशिष्टताओं और उनके विविध कलारूपों में हो रहे बदलाव को समझने का अवसर मिलेगा।

'कोल' जनजाति के शोध और अध्ययन का कार्य वरिष्ठ लोक साहित्यकार और देशी बीजों के संरक्षक श्री बाबूलाल दाहिया द्वारा किया गया है। श्री दाहिया का धरातली अध्ययन इस शोध में स्पष्ट परिलक्षित होता है। हमें विश्वास है कि जनजातीय जीवन और सांस्कृतिक अध्ययन में रुचि रखने वाले हमारे पाठक इस विनिबंध का स्वागत करेंगे और अपने अभिमत से हमें संसूचित भी करेंगे।

अशोक मिश्र
संपादक

कोल जनजाति

मध्यप्रदेश में जनजातियों की सात प्रमुख जातियाँ एवं चौंतीस उपजातियाँ पाई जाती हैं। इनके मूल को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। फिर भी प्रमुखता से दो समूह रहे हैं- पहला उत्तर पूर्व में कोलारियन-मुंडा समूह और दूसरा दक्षिण में द्रविड़-गोंड समूह। चूँकि प्राचीन समय में जो भी यहाँ बाहर से आये, वह उत्तर-पश्चिम की ओर से ही आये, अस्तु उनका मुकाबला सबसे पहले कोलारियन मुंडाओं के पूर्वजों से ही हुआ, द्रविड़ तो सुदूर दक्षिण में थे। यही कारण है कि उत्तर भारत में रचे गए तमाम संस्कृत ग्रन्थों में मुख्यत: कोलों-भीलों और निषादों का वर्णन ही पाया जाता है।

समीपता के साथ-साथ रीति-रिवाज परम्पराओं एवं जीवन शैली में भी भारिया और सहरिया गोंडों के बजाय कोलों के अधिक करीब हैं। अधिकांश विद्वानों का कथन है कि भारतीय जनजातियों का डी.एन.ए. अफ्रीका के मूल निवासियों से मिलता है, अस्तु भारतीय लोगों के पूर्वज प्राचीन समय में वहीं से आये होंगे या वहाँ गये होंगे, किन्तु इस पर भी अलग-अलग मत हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि यहाँ की जनजातियाँ कहीं से आई नहीं, बल्कि 'लाखों साल पहले अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं अंडमान द्वीप समूह सब भारत के साथ मिले हुए थे। लेकिन बाद में प्राकृतिक हलचल हुई, जिससे बीच में समुद्र उभर आया और कुछ भू-भाग डूब गए, अस्तु अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और भारत अलग-अलग हो गए। इस जमीनी हलचल और जल प्लावन में बहुत से लोग डूबकर मर भी गए होंगे, लेकिन जो ऊँचाई पर थे, वह बचे और एक-दूसरे से दूर कट से गए।

खैर! जैसा भी हो पर हमारे मध्यप्रदेश में इन सातों प्रकार के निवासरत जनजातियों के अलग-अलग भौगोलिक निवास स्थल हैं; क्योंकि गोंड, जहाँ सीधी, सिंगरौली, शहडोल, मण्डला, अनूपपुर, सिवनी, बालाघाट, छिंदवाड़ा आदि जिलों में अधिक पाए जाते हैं, वहीं सहरिया ग्वालियर सम्भाग के समस्त जिलों में। इसी तरह भील धार, झाबुआ, अलीराजपुर, रतलाम सहित उज्जैन-इंदौर और राजस्थान, गुजरात से जुड़े जिलों में तो भारिया जनजातियों की अपनी उत्स भूमि छिंदवाड़ा जिला है, जहाँ वे पातालकोट जैसे दुर्गम स्थान तक में अपनी पैठ बनाए हुए हैं।

विद्वानों के अनुसार यह तो पाँच द्रविड़ मूल के हुए, किन्तु आस्ट्रिक मुंडा समूह के कोरकू बैतूल एवं छिंदवाड़ा के कुछ क्षेत्रों में निवासरत हैं, तो कोल समुदाय के निवास वाले मुख्य जिले रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, शहडोल, कटनी, अनूपपुर हैं। साथ ही जबलपुर, पन्ना, मण्डला, डिंडोरी आदि भी हैं जो कम संख्या वाले जिले माने जाते हैं। राजनीतिक सीमाएँ कभी स्थाई नहीं रहती, वे घटती-बढ़ती रहती हैं। शायद यही कारण है कि रीवा के तराई वाले भाग से जुड़े उत्तरप्रदेश के जिलों में भी कोलों की बहुत बड़ी संख्या निवास करती है। इस भू-भाग में उनकी दो उपजातियाँ और पायी जाती हैं, वे हैं भुमिया एवं मवासी। साथ ही एक कोलमंगन जाति भी है जो कोल समुदाय में मृत्यु के बाद दान लेती है। इसी तरह भुमिया समुदाय में भी मृत्यु का दान लेने वाली एक उपजाति है जिसे वरितिया कहा जाता है, पता नहीं इनकी संख्या इतनी कम क्यों है कि उस जाति के गिने-चुने लोग ही मिल पाते हैं?

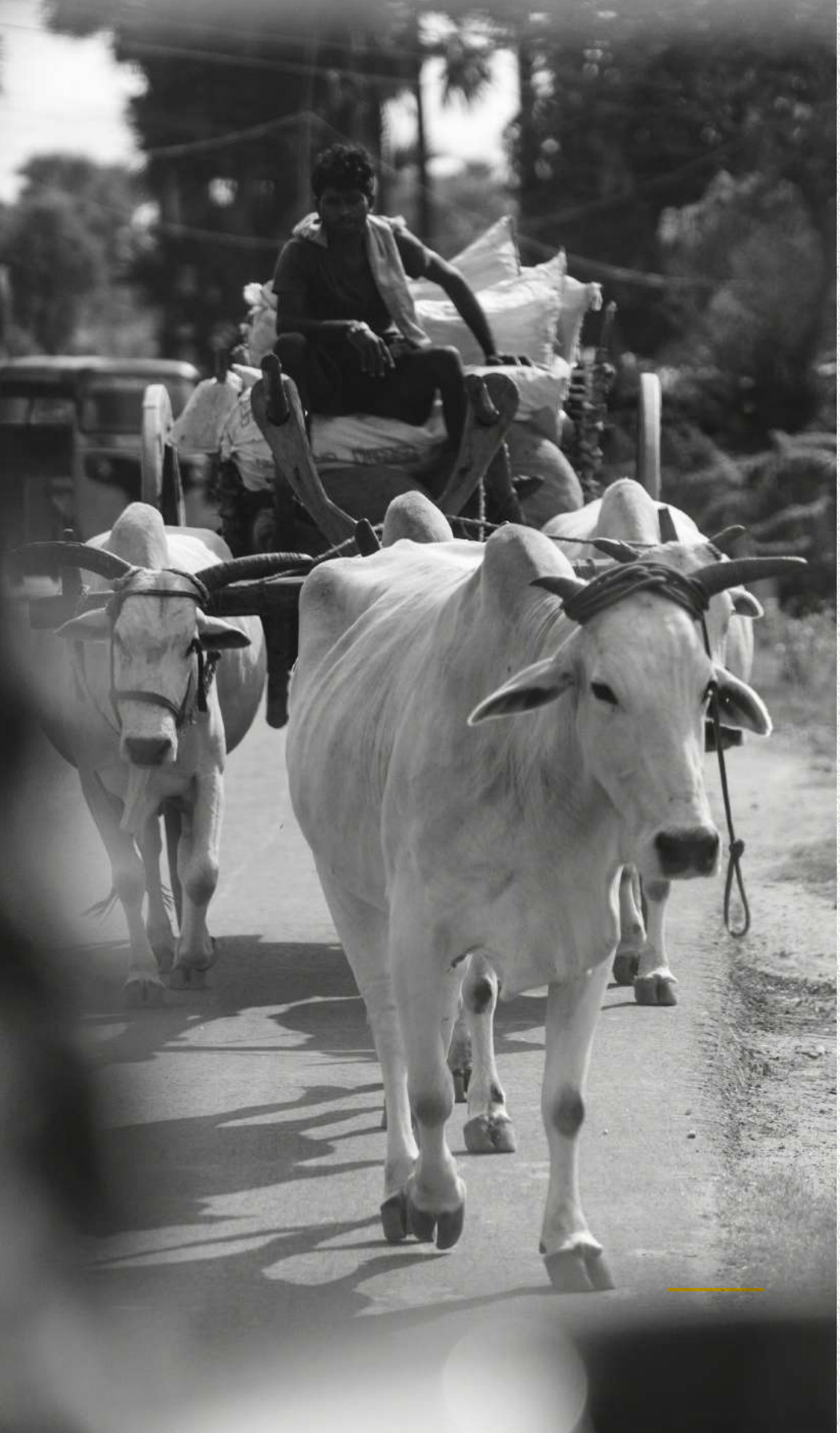

कोल जनजाति के विविध सांस्कृतिक पक्ष पर कुछ लिखने के पहले यह जानना-समझना आवश्यक है कि आखिर संस्कृति है क्या, जिसके विविध पक्षों को हम जानना चाहते हैं? यहाँ कोल जाति की संस्कृति का आशय है- उस समुदाय के विशेष संस्कारों को जानना, उनकी आदतें रीति-रिवाज, परम्पराओं को पहचानना एवं जीवन-यापन का तरीका, रहन-सहन, भोजन, आवास, पहनावा तथा गीत-संगीत भी। यानी कि उनके समग्र जीवन जीने की शैली पर विचार करना, क्योंकि किसी समुदाय की संस्कृति का मतलब होता है- औरों से अलग दिखने वाला उस समुदाय विशेष का परिमार्जित ज्ञान व क्रियाकलाप। अक्सर देखा गया है कि बाकी जनजातियाँ तो घने जंगलों में रहना पसंद करते हैं, वहीं कोल समुदाय की बस्ती जंगल के किनारे वाले ग्रामों में होती है, जिससे वे जंगल से लायी गई लकड़ी को पास के कस्बे में बेच सकें। किसानों के यहाँ मजदूरी या फिर चूना पत्थर के भट्टों, खदानों आदि में काम करना इनकी आजीविका का मुख्य साधन है।

कोल नामकरण

इस समुदाय के जाति का नाम कोल क्यों पड़ा? यह सन्थाल या मुंडारी भाषा से आया शब्द है या किसी अन्य कारण से पड़ा? क्या कोल उस मुंडा समुदाय का उपवर्ग है, यह अपने आप में एक पेंचीदा प्रश्न है, क्योंकि मध्यप्रदेश के 7-8 जिलों के सीमित क्षेत्र और उसी से जुड़े उत्तरप्रदेश के कुछ जिलों में ही प्रमुख रूप से बसने के कारण इस जनजाति का कोई बहुत बड़ा लिखित इतिहास इस क्षेत्र में तो नहीं है। जो है उसका आधार जनश्रुति और अनुमान ही है। अलबत्ता पुराण ग्रन्थों और महाभारत आदि में अवश्य कोलों का उल्लेख है। मध्य एशिया से आये लोगों का प्रथम मुकाबला कोलारियन मुंडा समुदाय से ही होता था। वर्तमान में यहाँ निवासरत तमाम व्यापारिक जातियाँ एवं कई राजवंश तो बाद में इस भूमि में आये ही, पर ऐसा लगता है कि उनके पहले इस करूस जनपद में लम्बे समय से निवास कर रहे गोंड-बैगा समुदाय से भी कोल यहाँ का प्राचीनतम रहवासी है।

कोलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के लेखों तथा रांची विश्वविद्यालय-झारखंड के कुछ शोधकर्ताओं का कथन है कि - 'कोल संथाली के 'हर' शब्द से निकला नाम है, जिसका आशय उस भाषा में 'मनुष्य' होता है, क्योंकि कोल मुण्डा अपनी कोलारी बोली में अपने को 'हर', 'होर', 'हो' अथवा कोरो नाम से पुकारते थे और इन सभी शब्दों का आशय मनुष्य ही होता था, यहाँ तक की (हो, होर, होरो) से निकली कोलों के समकक्ष ही एक जनजातीय (कोरकू) के (कोर) में जब (कू) लग जाता है, तब उसका अर्थ बदल जाता है और वह कोलारियन मुंडा भाषा में मनुष्य से मनुष्य समाज हो जाता है। फिर भी यह कोल नाम उस हो, होर, कोर समाज के दिए हुए नहीं हैं।

सम्भव है कि अन्य भाषा-भाषियों ने सुना और उनके समझ में जो आया, उसके अनुसार उन्होंने 'कोल' नाम दे दिया। ठीक उसी प्रकार जैसे ईरानियों से सिन्धु नदी के नाम के पहले अक्षर (सि) के स्थान पर (हि) उच्चारण के कारण उन्होंने सिंधु नदी के इस पार रहने वालों को (हिन्दू) नाम रख दिया और बाद में सभी यहाँ के लोगों को हिन्दू ही कहने लगे।'

कमोबेश यही बात जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी-भोपाल से प्रकाशित 'सम्पदा' नामक पुस्तक में भी कही है कि 'अनेक जातियों का नामकरण उन जातियों के लोगों नहीं किए, अपितु उनके पड़ोसियों ने किया है। लगता है इसी प्रकार इन आस्ट्रिक मुंडा समूह की जातियों का नामकरण भी अन्य लोगों द्वारा ही किया गया और खासकर उन तमाम जातियों का जो अधिकांश अपने को मनुष्य गण कहती थी, क्योंकि 'कोल', 'कोड़ा', 'कोरकू' यह कूर का बहुवचन है।' पर उन्हीं के अनुसार कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि- 'कोल की उत्पत्ति कोरा या कोरार से हुई है जो कि छोटा नागपुर के खारिया जनजाति द्वारा मुंडा जनजाति के लिए दिया गया सम्बोधन है।' और कुछ का मत है कि 'उसका प्राचीन स्थल सिंहभूमि का कोलाहन इलाका है, जिसे कोलों की मुख्य प्राचीन उत्पत्ति भूमि भी कहा जा सकता है। यह स्थान झारखंड, उड़ीसा, बंगाल का एक जुड़ा हुआ भू-भाग है।' किन्तु झारखंड रांची विश्वविद्यालय की जनजाति एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. सरस्वती गगराई ने प्राचीन 'हो' भाषा पर शोध किया है और अपनी पुस्तक में लिखा है कि- यह 'हो' संथाली में होड़ एवं मुंडारी में होड़ा हो जाता है किन्तु 'हो' के उत्पत्ति के बारे में मुंडा समुदाय के बीच प्रचलित

मिथक के अनुसार उन्होंने बताया है कि- अण्डे के पहले एक प्वाइंट या बिंदु बनता है, फिर हो में हो बनता है बस यहीं से निकला हुआ यह (हो) है, जिसका आशय उस जीवधारी से है जो माँस का बना है।

मुंडारी समुदाय में प्रचलित एक मिथक कथा पर वह आगे लिखती हैं कि 'पहले जल ही जल था और भगवान पत्ते-पत्ते निष्प्रयोजन घूमते थे। इसलिए सृष्टि रचने के लिए सबसे पहले उन्होंने जोंक के माध्यम से पानी के नीचे से मिट्टी निकाली और धरती का निर्माण किया। उस धरती में घास-फूस वनस्पति और पशु-पक्षियों को पैदा किया। उन्हीं पक्षियों में एक 'हुर' नामक पक्षी था। उस पक्षी ने अण्डे दिए, जिससे दो मानव सन्तान हुए उनमें एक लड़का दूसरी लड़की। आगे चलकर उन्हीं से मानव का विकास हुआ। चूँकि वह मानव सन्तान 'हुर' नामक पक्षी से पैदा हुए थे, अस्तु उन मनुष्य जाति का नाम ही 'होरो' या 'हो' हो गया। इस तरह कोल और मुण्डा सहोदर भाई जैसे हैं।

महाभारत में भी एक शूकर की तरह मुख आकृति वाले राजा का उल्लेख है, जिसे कोल राजा ही सम्बोधित किया गया था और वह कंश का मित्र था। बाद में उसे श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम ने मार डाला था। हो सकता है महाभारत से ही यह शूकरार्थी नाम आ गया हो, पर सुमित कुमार चटर्जी द्वारा वर्ष 1923 में लिखी गई एक पुस्तक 'द स्टोरी आफ कोल' में कहा गया है कि 'कोल कोई जाति नहीं, बल्कि एक नस्ल का नाम है। उसका पहले 'हो' नाम था, इसके अंतर्गत सभी प्रोटो आस्ट्रेलियायी प्रजाति आती हैं, जिनके उपनाम मुंडा, सन्थाल, उरांव, असुर, महली, कोरकू आदि हैं।' इस तरह श्री चटर्जी के कथन से यह सिद्ध होता है कि 'कोल, मुंडा का उपवर्ग नहीं, बल्कि मुंडा ही कोल 'हो' का उपवर्ग है, जिसका आशय मनुष्य होता है, क्योंकि मुंडा 'हो' वंश के मौजा प्रमुख को या गाँव के सबसे धनाढ्य व्यक्ति को कहा गया है और यही अर्थ विन्ध्य में कोल के 'गौटिया' का भी होता है। इसलिए जाति सभी की 'हो' थी और बाकी सभी 'हो' से निकले ही नाम हैं।

यह 'कोल' या 'हो' समुदाय ही उत्तर पूर्वी भारत का आदिम वासी था, जो दक्षिण के द्रविड़ लोगों से अलग एक नस्ल भी था। उनके अनुसार 'पहले 'हो' समुदाय की हर जगह एक भाषा तो थी ही, पर एक लिपि भी थी। यहाँ तक कि यह जो विंध्य नाम है, वह विजद्योचल है जिसका अर्थ हमारी कोलों की प्राचीन भाषा में 'साँप का पुल' होता है, क्योंकि विंध्य पर्वत की संरचना देखी जाय तो नाग जैसी ही है। जिसका मुख झारखंड में है और पूँछ गुजरात में। इसका वर्णन हमें कोल वंश के मंत्रों में भी मिलता है। यह विंध्य भी हमारी भाषा के 'विंज्य' या 'विंज' का ही अपभ्रंश है जो अवधी एवं बघेली के प्रभाव से विंध्य और क्षेत्र का नाम विंध्यांचल हो गया। परन्तु बाद में हमारी भाषा-संस्कृति एवं लिपि सब कुछ नष्ट हो गई।'

कोलों का एक नाम 'गौटिया' भी प्राचीन समय से ही मिलता है। गौटिया का आशय वही होता है जो मुंडा का यानी गाँव का मुखिया, गाँव का प्रमुख या यूँ कहें कि गणराज्य का प्रमुख। क्योंकि जब देश में अलग-अलग साम्राज्य थे, तब यहाँ भी छोटे-छोटे राज्य ही रहे होंगे जो गणराज्य कहलाते थे। इसके प्रमाण के रूप में उनके पुराने राज्यों की छोटी-छोटी गढ़ी के खण्डहर आज भी विंध्याचल के उ.प्र.-म.प्र. वाले दोनों भाग में अभी तक मौजूद हैं। इसी तरह के कोल राज्यों के प्रमाण सिंगरौली में मांडा एवं रीवा जिले के डभौरा, अतरैला नगरों के पास कई गढ़ियों के खण्डहरों से प्रमाणित हैं।

त्यौंथर के एक कोल राजा की कथा भी जनश्रुति में है, वहीं कोलों के एक राज्य का पता तो सीधी जिले में भी चलता है जिसके राज्य को बाद में इस क्षेत्र में राज्य स्थापित करने वाले राजाओं ने जीतकर छीन लिया था। इस युद्ध में कोलों को बहुत बड़ी संख्या को मौत के घाट उतारने के कारण आज भी उस स्थान को 'कोलकटी' नाम से जाना

जाता है। हो सकता है, उन गणराज्यों के हर एक गाँव में पहले मुखिया बनाकर रखने की परम्परा रही हो और उसी प्राचीन परम्परा के अनुसार कोल को गौटिया एवं कोलिन को गौटिन कहा जाता रहा हो, जिसके अवशेष आज भी मौजूद हैं।

कोलों की परम्परा में मुखिया वाले गुण अभी भी मौजूद हैं, क्योंकि जातीय विवादों को सुलझाने के लिए कोर्ट-कचेहरी के बजाय अभी भी उनकी इस तरह की जातीय पंचायतें होती हैं जो काफी अधिकार सम्पन्न मानी जाती हैं और जातीय विवाद वही पटाती हैं। किन्तु बाद में उत्तर की ओर अन्य वंश के राजाओं एवं दक्षिण की ओर से गोदावरी के कछार में बसने वाले द्रविड़ मूल के गोंडों ने जब यहाँ आकर अपना-अपना राज्य विस्तार कर लिया और कोलों को अपने मूल स्थानों से निर्वासित कर दिया तो वे घने जंगल से निकल कन्द-मूल, फल एवं जंगली धान, पसही व सांवा के दानों से अपनी आजीविका चलाते हुए जंगल के किनारे वाले भागों में बस गए।

इस सम्बंध में सतना जिले के राजेश रावत का कथन है कि 'जंगल में अन्दर की ओर बड़े पेड़, मझोले पेड़, गुल्म लताओं एवं झाड़ियों युक्त घना वन होता है और उन वृक्षों के नीचे जड़ी-बूटियाँ कन्द भी, पर मैदानी भाग के किनारे सघन जनसंख्या के दबाव में छोटे वृक्ष ही रह पाते हैं जिसे जंगल का कूल क्षेत्र माना जाता है। वही कूल वाला क्षेत्र जिसे पद्माकर ने अपनी कविता में कहा है कि - 'कूलन में कछारन में बगरो वसंत है।'

कोल समुदाय समूचे समूह के साथ इसी जंगल के किनारे के कूलन क्षेत्र में बसता है। हो सकता है जब उस कूल क्षेत्र में वह 'हो' या गौटिया समाज बसा हो तो जंगल के कूल की उस बस्ती को कूलान कहा जाता रहा हो, जिसे कालांतर में बाहर से आकर कृषि या व्यापार करने वाले लोग कूलान के बजाय 'कोलान' कहने लगे हों और कालांतर में वहाँ के रहवासियों का नाम ही कोल पड़ गया हो! ठीक उसी प्रकार जैसे प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के पूर्वजों को परसा (पलास) के जंगल के पास बसने के कारण पहले 'परसा वाले पंडित जी' कहा जाता था और फिर बाद में 'परसाई' कहा जाने लगा। किन्तु फिर भी कोलों का गौटिया-गौटिन नाम आज भी बना हुआ है, लेकिन बाहर से आने वालों ने कोलों का सारा प्राकृतिक संसाधन छीन लिया तो कोल समुदाय वनोपज संग्रह के साथ-साथ मजदूरी भी करने लगा। साथ ही कुछ लोग जंगल से काट कर उन बस्तियों में बसने वालों के लिये लकड़ी की आपूर्ति करके भी अपनी आजीविका चलाने लगे। 'कोल' नामकरण के कारण चाहे जो रहे हों, पर हमने अनेक जिलों में घूम-घूमकर कोल समुदाय की बस्तियों को निकट से देखा है। चाहे वह कटनी, उमरिया, सीधी वाला क्षेत्र हो या मझगवां अथवा मैहर, नागौद से लगा हुआ परसमनिया पठार, किन्तु हम इसी निष्कर्ष में पहुँचे हैं कि वे अपनी बस्ती ऐसे स्थानों पर ही बनाते हैं जो पहाड़ से अधिकतम तीन-चार किलोमीटर दूर हो।

इस तरह उनका यह कोल नाम चाहे जिस प्रकार पड़ा हो, किन्तु उनकी पहचान अब मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के कुछ जिलों में बसे कोल से ही है।

उत्पत्ति कथाएँ

अब तक रीवा, सीधी, कटनी, उमरिया आदि तमाम क्षेत्रों के भ्रमण घूमने के बाद भी कोलों द्वारा अपनी उत्पत्ति के खुद कोई ऐसे मिथक नहीं बताए गए, जिनमें उनकी उत्पत्ति वर्णित हो। जो भी बताया बस इतना ही कि 'कहते हैं उनके पूर्वज बंगाल, उड़ीसा एवं झारखंड के सीमा वाले क्षेत्र सिंहभूमि के कोलाहन क्षेत्र से यहाँ आए।' हो सकता है पहले बुजुर्गों में उत्पत्ति वाले कुछ मिथक रहे हों। किन्तु सयाना व्यक्ति तो एक चलती-फिरती लाइब्रेरी की तरह होता है, पर जब वह गुजरता है तो बहुत सारा पारंपरिक ज्ञान एवं जीवन अनुभव भी समेटकर चला जाता है।

जनजातीय लोककला एवं बोली विकास अकादमी की पुस्तक 'सम्पदा' में प्रकाशित एक मिथ कथा है कि 'प्राचीन काल में उनके देवता ओटो-बोरम और सिंग बोंगा (सूर्यदेव) ने सृष्टि रचना के लिए एक नर और नारी को जन्म दिया। उन्हें एक गुफा में रखा गया। बहुत समय बीत जाने के बाद भी उनमें संसर्ग नहीं हो पाया, जिससे देवता चिंतित हुए। उसके बाद सिंग बोगा ने नर-नारी को चावल की मदिरा बनाने और सेवन करने का उपाय बतलाया।

देवता के आदेशानुसार वह युगल मदिरा बनाकर सेवन करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनके संसर्ग से बारह पुत्र-पुत्रियों का जन्म हुआ। सिंग बोगा के आदेशानुसार उन दम्पतियों ने अपने खाने के लिए भोज्य सामग्री चुनी। इनमें प्रथम और द्वितीय दम्पति ने अपने लिए बैल और भैंसे का माँस चुना तो जो उनसे सन्तान हुई वह कोल हुए और भूमिज के आदि पूर्वज हुए। दो दम्पति ने निरामिष भोजन चुना तो उनसे क्षत्रिय और ब्राह्मण पैदा हुए। इसी तरह कुछ ने बकरे एवं मछली का माँस, एक जोड़े ने शैल मछली का माँस चुना तो उनकी सन्तान भुंइया कहलाई। पर अंतिम जोड़े को कुछ नहीं बचा, यह देख प्रथम दम्पति ने अपनी सामग्री का कुछ भाग उसे दे दिया, अस्तु उसकी सन्तान घसिया कहलाई।' उधर पौराणिक आख्यानों के अनुसार कोल, भील निषादों की उत्पत्ति असग के पुत्र वेन से हुई बताई जाती है। विष्णु पुराण एवं हरिवंश पुराण में कथा है कि 'एक बार वेन के मन में पाप जागृत हुआ, तब ऋषि-मुनि उसके पास पहुँचे। वेन ने अपना हाथ उठाकर उन्हें वहाँ से हट जाने का संकेत दिया। इस पर अंगिरा ऋषि ने श्राप दिया तो उसका वह हाथ दही बिलोने की मथानी बन गया, जिससे निषाद की उत्पत्ति हुई। उन्होंने जब बायें हाथ से मथने का उपक्रम किया तो उससे भी तीन मानवों की उत्पत्ति हुई जो मुशहरा, कोल्ल तथा बिल्ल कहलाए।' कोलों का उल्लेख महाभारत सहित कुछ पुराणों में भी मिलता है।

टमसा कथा

कोलों पर एक कथा टमस के उद्गम के पास की भी है, जो आस-पास के कोल सुनाया करते हैं। यह उद्गम कटनी और सतना जिले की सीमा में झुकेही के पास है। पर जहाँ वह गंगा में संगम बनाती है, उसके किनारे-किनारे लगभग 200 किलोमीटर के उस क्षेत्र में सर्वाधिक कोलों का निवास है। कहते हैं कि उद्गम से निकली टमस की उस पतली सी धार में पहले किसी किसान ने एक बाँध बंधाया हुआ था। आषाढ़ की पहली मानसूनी बारिस में अक्सर नए बाँध में दरार आ जाती है और उसकी मरम्मत न हुई तो बाँध फूट भी जाते हैं। उस कथा के अनुसार वह किसान अपने टमसा नामक हलवाहा को लेकर उस नए बाँध की मरम्मत करने गया। पर किसी से सुन रखा था कि 'जल देवता को बलि दे देने से बाँध नहीं फूटता।' अस्तु उस अंधविश्वासी किसान ने मेड़ में आई दरार को बन्द कराने के बहाने अपने हलवाहे टमसा को ले गया और मिट्टी भरने के लिए दरार में उतारा। किन्तु जब वह मिट्टी में धँस गया तो उसे निकालने के बजाय ऊपर से और मिट्टी डाल उसकी बलि देकर घर लौट आया। जब टमसा देर रात तक घर नहीं लौटा और उसकी पत्नी को संदेह हुआ तो वह अपने पड़ोसियों के साथ खोजने के लिए वहाँ गई।

किन्तु जब खोजने पर पति नहीं मिला और उसे विश्वास हो गया कि वह उस बांध के मेड़ में ही मरम्मत करते समय कहीं धँस कर मर गया होगा? तो वह उस मेड़ में खड़ी होकर रुदन करने लगी और पति को पुकारकर कहा कि 'यदि तू मेरा सत्य का पति है तो इस बाँध को फोड़ दे और मेरे साथ गंगा माई में चल?' कहते हैं कुछ समय बाद सचमुच पानी का एक झोंका आया और साथ में आये लोगों ने देखा कि बाँध फूट गया, वे दोनों पति-पत्नी उसकी धार में बह गए। किन्तु अन्य किसी नदी में मिलने के बजाय वह टमस नदी गंगा में ही जाकर दो-चार किलोमीटर आगे वहाँ मिली है, जहाँ गंगा और यमुना अपना संगम बना एकाकार होकर आगे बढ़ जाती हैं ।

टमस नदी को उसके आस-पास बसने वाला कोल आज भी अपनी पवित्र नदी मानता है और वहीं अपने परिजनों का अस्थि विसर्जन भी करता है।

स्रोत- श्री कमला कोल, अतरवेदिया कला

आख्यान

एक आख्यान सतना जिले के चित्रकूट के आस-पास पाठा क्षेत्र की है। वहाँ बसने वाले कोल समुदाय की उपजाति मवासी की इन्दाबाई द्वारा अपने समुदाय की विपन्नता पर एक कथा सुनाई गई। यही कथा हमें बहुत पहले 'घोंघी कोल' पिथौराबाद ने भी सुनायी थी, पर उनका अब निधन हो चुका है। कथा इस प्रकार थी कि- एक नववधू विवाह की विदा के पश्चात् पालकी में बैठी ससुराल आ रही थी। अगहन माह के दिन थे, अस्तु जब उसे लेकर चलने वाले कहार दो-तीन कोस चलकर थक गए तो पालकी को एक धान के खलिहान के समीप रख पानी पीने लगे। जहाँ पालकी रखी थी, वहाँ गाह-मींज कर ले जाई गई धान के पोकचे और दानों का 'बदरा' बिखरा हुआ था।

जब पालकी में बैठी वधू ने धान के उस बदरा को बिखरा हुआ देखा तो अपने मायके में एक-एक दाने को आदर देने वाली वह वधू डोले से उतरकर खलिहान में पड़ी हुई पोकचा धान के पास आई और उसे समेट पालकी में रख लिया। उसको ऐसा करते देख पालकी को अपना अपमान महसूस हुआ और उसने कुपित होकर श्राप दे दिया कि 'जा- तू सारी जिन्दगी खेत खलिहान में बिखरे पड़े दाने ही समेटती रहेगी।'

कहते हैं तभी से इस समुदाय में विपन्नता आ गई और अब भी यह समुदाय अपने खाने के लिए खेत-खलिहान में पड़े दाने, डबरे-पोखरी में उगी पसही या समई आदि को ही एकत्र करता रहता है। भेंट के दौरान उस पाठा क्षेत्र के कुछ कोलों ने अपने को शबरी की संतान बताया। गोस्वामी तुलसीदास के समय में भी चित्रकूट के उस पाठा क्षेत्र में कोल समुदाय निवासरत था और ऐसी ही विपन्नावस्था में था।

गोस्वामी जी ने *'श्रीरामचरितमानस'* में कोल किशोरियों को वन उपज संग्रह करते देखकर लिखा है कि -

वन हित कोल किरात किशोरी।
रचि वरंच बनई जनु थोरी॥

लोक देवता छत्रपाल

इसी तरह एक किंवदंती हमें डुडहा गाँव में कोलों के किसी पुरखे छत्रपाल बाबा की भी मिली है, जिनकी प्रतिमा जमीन में आधी धँसी हुई थी, पर अब निकालकर वे एक चबूतरे में बैठला दिए गए हैं और छोटी सी मन्दिरिया भी बन गई है। कहते हैं एक बार कोलों के उस गाँव में बादल घिर आये और उल्का पात के साथ बार-बार बिजली चमकने लगी। पर कोलों के बीर बन चुके उस देवता छत्रपाल को आभास हुआ कि वज्रपात से हमारे संतानों की बहुत बड़ी जनहानि हो सकती है। अस्तु उन्होंने बादलों से कहा कि 'जितनी बिजली टूटनी हो, मेरे ऊपर टूटे। इस गाँव में बसे मेरे संतानों के ऊपर नहीं। कहते हैं उनके ऊपर वज्रपात हुआ और छत्रपाल की आधी मूर्ति जमीन में धंस गई। पर उन्होंने अपनी संतानों को सुरक्षित रखा। यही कारण है कि समूचा कोल समुदाय पहले सामूहिक पुजाई में उन्हें बकरे की बलि चढ़ाता था और बाद में अन्य देवताओं की पुजाई होती थी, पर अब छत्रपाल बाबा भी अन्य देवताओं की तरह नारियल रोट चढ़ने में ही राजी हो गए हैं।

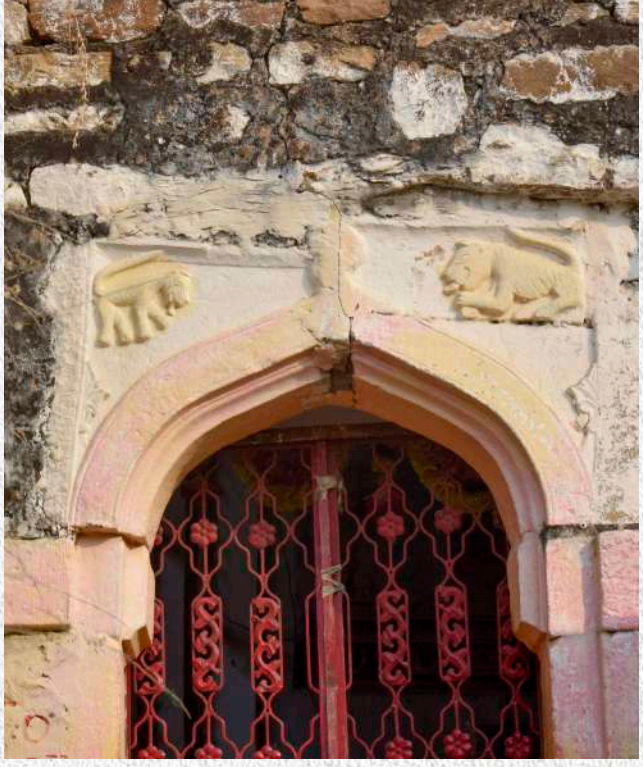

लहुरा बाबा

बहादुरी की एक गाथा लहुरा बाबा की भी है। कहते हैं, हांका (शिकार) खेलने आये राजा के बन्दूक से जब बाघ घायल हो गया तो राजा ने सभी हांका में आये लोगों को पेड़ पर चढ़ जाने को कहा। बाकी लोग तो पेड़ पर चढ़ गए, परन्तु राजा के साथ आया एक शिकारी पेड़ तक नहीं पहुँच पाया। जब उस जवान की ओर बढ़ रहे बाघ को पेड़ पर चढ़े लहुरा बाबा ने देखा और वह उसके ऊपर झपट्टा मारने को ही था कि पेड़ से कूदकर उस जाबांज लहुरा ने बाघ के गले में ऐसा दो हथ्थी कुल्हाड़ी का वार किया कि बाघ की घीच (गर्दन) आधी कटकर झूल गई, पर बाघ भी चार साल का पक्का जवान था। उसने मरते-मरते लहुरा के पेट में भी एक ऐसा पंजा मारा कि उसकी आँतें बाहर निकल आईं और वह वहीं मरकर वीर बन गया। कहते हैं वीर बन चुके अपने इस पूर्वज को आज भी वहाँ का कोल समुदाय पहाड़ के घाट में जाकर रोट नारियल चढ़ा कर पूजा करता है।

कोलई बीर

त्यौंथर में एक किंवदन्ती लोक देवता बन चुके वहाँ की गढ़ी के किसी कोल राजा की भी है, जिन्हें लोक मान्यता अनुसार वर्षा न होने पर पानी वर्षाने के लिए बरी-रोटी चढ़ाई जाती है। लोगों का कथन है कि कितना भी सूखा हो, पर कोलई बीर नाम से विख्यात उन लोक देवता को बरी-रोटी चढ़ा देने से वर्षा अवश्य होती है। पर रोटी-बरी वह तभी स्वीकार करते हैं, जब रोटी बेलनहाई के बजाय हथपोई हो और बनाने वाली उसी कोल राज्य वंश की महिला हो। पहले उन कोलई बीर की मूर्ति एक बरगद के पेड़ के नीचे थी। किन्तु टमस नदी के भीषण बाढ़ में जब वह बरगद उखड़ कर सूख गया तो अब वह मूर्ति एक ठाकुर साहब के मकान के दीवाल से सटे चबूतरे पर रखी है, जिसे बरी-रोटी चढ़ाने का कार्य उसी कोल वंश की राजकली कोल करती हैं।

यह कथाएँ कोल समुदाय के उत्पत्ति की मिथक कथाएँ तो नहीं कही जा सकतीं, पर इतना संकेत अवश्य देती हैं कि कोल समुदाय यहाँ का प्राचीनतम निवासी है।

बरिहा कोहड़ा के बलि की कथा

एक कथा हमें बरिहा कुमड़ा के बलि की भी मिली है। कुछ कोलों का टोटम मुडिया है, जिनके यहाँ मूड़ (सिर) के रूप में नवरात्रि के समय देवी को बरिहा की बलि चढ़ाई जाती है। एक किंवदन्ती हैं कि देवी का एक भक्त किसी पास के गाँव से नरबलि चढ़ाने के लिए एक लड़के को पकड़कर ले आया, किन्तु गाँव वालों को पता चल गया और वह उसका पीछा करते-करते उसके घर तक पहुँच गए, जहाँ वह नरबलि देने की तैयारी कर रहा था।

अपहरण करने वालों ने जब यह जान लिया कि हम अब बालक की चोरी में पकड़े जायेंगे तो उस बालक को एक टोकने के नीचे ढँक दिया और देवी से कहा कि 'हे देवी माता! हम तो इसे तेरे बलि के लिए लाए थे, पर अब इसके परिजनों द्वारा पकड़े जायेंगे। इसलिए हमारी रक्षा कर और तू इसे किसी दूसरे जीव के रूप में बदल दे।' कहते हैं देवी ने उसे बरिहा 'भूरा कद्दू' के शक्ल में परिवर्तित कर दिया। जब उस बालक के परिजनों ने तलाशी लेते हुए टोकने को पलटा तो उसके नीचे भूरा कद्दू था, अस्तु वे वहाँ से चले गए। कहते हैं तब से देवी को बरिहा की बलि दी जाने लगी। किन्तु जिनके यहाँ देवी के बरिहा की बलि चढ़ाई जाती है वे लोग न तो उस बरिहा कद्दू को वागड़ में उगाते हैं और न ही उसकी बरी बनाते हैं। इसी प्रकार की मिथ कथा एवं पूजा की परम्परा कोलों की उपजाति मवासी समुदाय में भी है, जिनके देवी को बरिहा की बलि दी जाती है। वे अपने घर में बरिहा को उगाकर देवी को नहीं चढ़ाते, बल्कि किसी के यहाँ से चुराकर लाए गए बरिहा को ही नरबलि का प्रतीक मान उसकी बलि देते हैं।

स्रोत- श्री राजेश कोल, डुडहा

पथरीगढ़

मवासी समुदाय के बीच काम करते समय वयोवृद्ध मवासी ने हमें आल्हा रासो का उदाहरण देते हुए बताया था कि- पथरीगढ़ वर्तमान पाथर कछार है।

'कठिन मवासी पथरीगढ़ के, जिनकी मार सही ना जाय।'

किन्तु इसी को पुष्ट करती पथरीगढ़ की एक किंवदन्ती हमें डभौरा के आसपास बसने वाले ठकुरिया कोलों से भी मिली है। उनका कथन है कि 'जब पथरीगढ़ के कोलों की गढ़ी गारद हो गई तो ठकुरिया कोलों की कुलदेवी वहाँ से अलोप हो गई। कुछ समय पश्चात् रउतेल कोल गए और पथरीगढ़ की गढ़ी में लोटकर परिक्रमा देते हुए कहा कि 'हे महरानी! हम कोल लोग तुम्हारा पहले जैसा पुन: आशीर्वाद चाहते हैं।'

किन्तु देवी प्रकट होकर बोली कि 'तुम कोल हो तो यहाँ बसकर आजीविका तो चला सकते हो, पर मैं तो ठकुरिया कोलों की कुलदेवी हूँ, इसलिए पूजा के अधिकारी तो वही हैं।' बाद में ठकुरिया कोल गए और उस सोनमती देवी को लाकर चकरीगढ़ में स्थापित किया। इसीलिए कुछ ठकुरिया खुद को सोनवंशी भी कहते हैं और चकरीगढ़ के उस मंदिर के पुजारी ठकुरिया कोल ही होते हैं। हमने जब चकरीगढ़ के बारे में पूछा तो 80 वर्षीय मंगली कोल ने उसे उत्तरप्रदेश में होना बताया, क्योंकि वहाँ से कुछ आगे ही उत्तरप्रदेश की सीमा लग जाती है।

इसलिए हो सकता है मवासी ठकुरिया कोलों से निकली जाति ही रही हो जो पथरीगढ़ में रहती रही हो और अपने राजा के लिए लड़ती रही हो, पर निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आख्यानों से इतिहास के आंशिक प्रमाण ही मिलते हैं।

स्रोत -श्री मंगली कोल

गोत्र

यूँ तो मध्यप्रदेश के मूल निवासियों या बाहर से आकर यहाँ बसने वालों में प्राय: सभी जातियों में गोत्र होते हैं। गोत्र को वह (वान बिरबा) या वैक कहते हैं।

विवाह पक्का करते समय कोल लोग पूछकर छान-बीन तो करते हैं, पर सभी सिर्फ यह देखते हैं कि उनकी लड़की सगे परिवार के वंश के बजाय फूफा या जीजा वाले वंश में ही ब्याही जाये। क्योंकि सभी का बान बिरबा एक ही रहता है। इस शोध में कोल समुदाय में अभी तक- रउतिया, रउतेल, ठकुरिया, कथरिहा, कठउतिहा, खंगार, कोलमंगन, बिंझ आदि सात गोत्र ही मिले हैं।

कहते हैं शहडोल, उमरिया में कुछ और गोत्र वाले हैं, पर हमें खोजने के बाद भी नहीं मिले। यह सभी उस बैक (बान-बिरबा) के हैं, जिनको जनगणना के समय जाति के कालम में कोल लिखा जाता है। पर अभी तक हम रउतिया, ठकुरिया, कठौतिहा, बिंझ और कोलमंगन बान बिरबा के कोलों से ही मिल पाए हैं।

सतना में उन्हें कुड़हा, कथरिहा, ठकुरिया, रउतिया, खंगार, कठौतिया तथा कविरहा मिले थे। शहडोल में चेथहा, नरछिना और रीवा में बिंझ-खैरवार थे। इसी तरह अन्य जगहों में लोनिया, गढ़बरिया भी थे। इनके और भी पहले श्री क्रूक ने अपने सर्वेक्षण में कोलों के बाईस उपभेद बताए थे। किन्तु वर्तमान में ऐसा परिवर्तन आ गया है कि उनके समय के बहुत सारे गोत्र अब नदारत हैं। नई पीढ़ी ने सुविधानुसार अपने को अन्य बड़े संख्या वाले गोत्र से जोड़ लिया है या स्वतंत्र अस्तित्व बना लिया है। उधर जब हम लोनिया एवं खैरवार लोगों से मिले तो लोनिया अपने को कोल जाति से अलग मानते हैं एवं खैरवार अपनी उत्पत्ति गोंडों से बताते हैं। ऐसा लगता है कि अब नई पीढ़ी में इन प्राचीन गोत्रों का कोई औचित्य ही नहीं दिखता।

हमने कई कोलों से खंगार एवं कथरिहा आदि अन्य तरह के बान बिरबा वालों के सम्बंध में भी पूछा कि वह हमें कहाँ मिलेंगे? तो वे नहीं बता पाए, क्योंकि उनसे खान-पान और विवाह सम्बन्ध न होने के कारण एक बान वाले दूसरे बान वालों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते। बस उन्हें सयानों की सात बान होने वाली सुनी-सुनाई बातें ही मालूम हैं, बाकी कुछ नहीं। लेकिन हमने घूमकर देखा कि सीधी जिले के उत्तरी भाग में और रीवा जिले के त्यौंथर-डभौरा की तराई वाले भाग में मुख्यत: ठकुरिया पाए जाते हैं। बाकी सतना, सीधी, उमरिया, कटनी आदि सभी जगह अधिकांश रउतिया ही मिले, जो अब अपना सरनेम रावत भी लिखने लगे हैं।

सतना में मात्र अकही नामक एक गाँव में कठउतिहा अवश्य मिले हैं जो गर्भ के साथ अपने को कठौतिहा ही बताते हैं। पर वहीं कचलोहा गाँव में बसने वालों को बाकी कोल तो कठौतिहा कहते हैं, किन्तु उनसे चर्चा की तो उन्होंने अपने को रौतिया (रउतिया) ही बताया और अपना सरनेम भी रावत लिखने लगे हैं। अब तो रौतिया लोगों से उनके विवाह सम्बन्ध भी होने लगे हैं। बाकी हमें खंगार और कथरिहा कहीं नहीं मिले। कथरिहा कोलों के गोत्र वालों के न मिलने का कारण हमें एक बुजुर्ग कोल ने बताया कि- दरअसल कोल लोगों में अनुज वधू और जेठ का रिश्ता इतना पवित्र माना जाता है कि दोनों न तो एक कमरे में रह सकते हैं, न ही एक वाहन में वे साथ-साथ चल सकते हैं। यही पवित्र रिश्ता मामा तथा उसके भानेज की पत्नी का होता है।

दरअसल कथरी मुख्यत: महिलाओं की फटी पुरानी धोती को सिलकर बनती है। इसलिए कम घर द्वार और छोटी-सी गृहस्थी के चलते कहीं जेठ अपने अनुज वधू की धोती की सिली हुई उस कथरी को भूल-चूक में ओढ़ने-दशाने में इस्तेमाल न कर ले, अस्तु समस्त कोल समुदाय में ही कथरी पूरी तरह प्रतिबंधित है।

वह पूस माघ की ठंडी में भी दो धोती एक साथ सांट या आग तापकर भले ही गुजर कर ले, पर कथरी कभी नहीं ओढ़ते। प्राचीन समय में शायद हुआ यह होगा कि किसी परिवार में घर की महिलाओं की धोती की कथरी रही होगी। लेकिन मजबूरी वश रिश्ते के किसी जेठ ने ठंडी के दिनों में उस कथरी को ओढ़कर गुजर कर लिया होगा, जिससे लोग अप्रसन्न हो गये होंगे और यह आचरण मान्यता के खिलाफ भी था। लोगों ने उसे समाज से अलग कर दिया होगा। कालान्तर में उसे कथरिहा कहने लगे होंगे। परिणाम यह हुआ कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस बान बिरबा की पहचान ही कथरिहा बन गई होगी।

लेकिन समय की नजाकत देख अब कथरिहा भी अपना नाम बदल लिए और बहुसंख्यक रउतिया बन गए। सतना जिले के एक गाँव में सीधी जिले के कुछ परिवार आकर बस गए हैं, जिन्हें यहाँ के अन्य कोल 'कथरिहा' कहते हैं और सतना वालों के बीच उनका रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं होता, पर उन्होंने अपने को रउतिया ही बताया। इसी तरह नागौद के पास एक गाँव जहाँ के कोलों को अन्य कोल कठौतिहा बताते थे, पर वह भी रौतिया बन चुके हैं और रावत लिखने लगे हैं। कथरिहा गोत्र वालों की तरह ही अलग गोत्र बनने का कारण शायद कठौतिहा भी रहा होगा।

इस समाज के एक वरिष्ठजन का कथन है कि 'कोल एक अभावग्रस्त समाज है। अस्तु उस समय की परिस्थिति में हमारे पुरखों ने मिल-बैठकर यह परम्परा डाली होगी कि 'हम विवाह में जब वर-वधू के पाँव पूजेंगे तो लकड़ी के बने कठौते से ही पूजेंगे, जिससे समाज के किसी व्यक्ति के ऊपर विवाह का बोझ न पड़े। उसके पश्चात् विदा के समय भले ही समर्थ के अनुसार जिन्हें जो बर्तन देना हो वह भी दे दें।' अस्तु कठौता से पैर पूजने के कारण लोग उन्हें कठौतिहा कहने लगे होंगे। किन्तु इस परिस्थिति जन्य निर्णय से हमें अपने पुरखों के ऊपर नाज है। इतना भर नहीं हमारे कोल समुदाय में तो विवाह के समय में वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष को दस कुरई कोदई भी दी जाती थी, जिससे कन्या पक्ष के ऊपर खर्च का एक तरफा बोझ न पड़े और उसे 'चारी' कहा जाता था। ये परम्पराएँ मौलिक थी।

जिस प्रकार कठौतिहा, कथरिहा एवं खंगार बान बिरबा वालों की संख्या बहुत कम है तो ऐसा लगता है कि यह दोनों बान वाले बहुसंख्यक रौतिया अथवा ठकुरिया से निकलकर ही अस्तित्व में आए होंगे, क्योंकि बाकी दादर गीत, देवी-देवता और उनकी पुजाई आदि एक जैसी है। अगर यह विभाजन हजारों वर्ष पहले का होता तो इनकी संख्या भी रौतिया और ठकुरिया बान वालों की तरह ही अधिक होती। वैसे जब धातु के बर्तन प्रचलन में नहीं थे, तब प्राय: सभी जातियों में लकड़ी के कठौते ही आम निस्तार में रहे हैं। तभी तो उसका उल्लेख केवट प्रसंग में आज से 400 वर्ष पहले गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में किया है कि -

केवट राम रजायसु पावा।
पानि कठौता भर लइआवा॥

उस समय लोग सर्व-सुलभ लकड़ी के कठौती-कठौता बनाकर बर्तन धोने के लिए पानी रखते ही थे, पर वह आटा आदि माड़ने के काम भी आता था। ऐसा भी हो सकता है कि बाद में बाकी लोगों ने नए प्रचलित बर्तन ले लिए होंगे। पर एक परिवार विपन्नता के कारण ऐसा नहीं कर पाया होगा और वह पुराने कठौता पर ही आश्रित रहा आया हो, इसलिए अन्य लोग उसे कठौतिहा कहने लगे होंगे। किन्तु अब तो कठौता कहीं प्रचलन में है ही नहीं। अस्तु लोगों को उस परम्परा को ढोना ही उचित नहीं लगा। लेकिन ये परम्पराएँ ऐसी होती हैं कि यदि एक बार चल गई तो लम्बे समय तक चलती रहती हैं। कोल समुदाय में रउतिया, ठकुरिया, कठौतिहा एवं कोलमंगन का आपस में विवाह नहीं होता था। रउतिया कहते हैं- हम सबसे श्रेष्ठ हैं और ठकुरिया कहते हैं कि हम हैं।

सीधी में इस विभाजन की एक अलग ही कथा है कि-'एक बार दो कोल महिलाएँ यात्रा कर रही थीं, अस्तु रात्रि में आँधी-पानी के कारण एक ने तो पेड़ के कोटर में घुसकर प्राण बचाया और दूसरी ने किसी ठाकुर के घर में शरण ली। बाद में ठाकुर के घर में रुकने वाली स्त्री की सन्तान ठकुरिया कहलाई, किन्तु इस क्षेत्र में ठाकुरों की जाति से यूँ ही ठकुरिया कोलों की संख्या बहुत अधिक है, अस्तु यह कहानी भी कपोल कल्पित ही लगती है और ठकुरिया कोल भी इसे नकारते हुए मनगढ़ंत बताते हैं।

कोल जाति के सर्वेक्षण से यही बात निकलकर आई कि जब एक बान वाले से दूसरे के साथ किसी तरह का रोटी-बेटी का सम्बन्ध ही नहीं था तो न तो कोई छोटा कहा जा सकता, न बड़ा। लेकिन अब कठौतिहा अपनी बेटी रउतिया को देने लगे हैं और कुछ तो खुद भी अपने को रावत ही बताने लगे हैं। परन्तु कोलमंगन ऐसे कोल हैं जो कोलों के यहाँ मरने पर दान लेते हैं और उनके यहाँ भोजन भी करते हैं। इसलिए रौतिया तथा अन्य कोल उनके यहाँ भोजन नहीं करते। कोलमंगन इनके यहाँ दान में अनाज, रुपये-पैसे तो लेते ही हैं किन्तु मृतक के पहनने के कपड़े तक ले जाते हैं। यह परम्परा मात्र सतना में है, रीवा-सीधी में नहीं है, क्योंकि वहाँ रौतिया लोगों के यहाँ भी बसोर मृत्यु दान लेता है और भोजन भी करता है। कोलमंगन का सरकारी दस्तावेजों में कोल नाम ही दर्ज होता है और उसी तरह देवी-देवताओं की पूजा भी होती है, पर इनका व्यावसाय अलग है, क्योंकि ये दान लेने के साथ-साथ खजूर की चटाई एवं झाड़ू बनाकर बेचने का काम भी करते हैं। यह तो सीधे उस बान-बिरबा वाले हैं जो कोल कहलाते हैं, पर इनके अतिरिक्त भी कोल समुदाय की कुछ उपजातियाँ हैं, जिनके उपनाम ही खुद पहचान बन चुके हैं। वह हैं- भुमिया और मवासी। इसलिए इनके भी रीति-रिवाज परम्पराओं, रहन-सहन एवं देवी-देवताओं आदि का विस्तृत अध्ययन आगे किया जा रहा है, पर जहाँ तक गोत्र व बान बिरबा वाली बात है तो उनके भी छः-सात बान-बिरबा होते हैं।

ऐतिहासिक पक्ष

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है कि कोल समुदाय मध्यप्रदेश के 23 जिलों एवं उत्तर प्रदेश के 9 जिलों में निवास करता है। किन्तु रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, कटनी, उमरिया आदि कुछ ऐसे जिले हैं, जहाँ इनकी संख्या सर्वाधिक है। यूँ तो कोल सुदूर त्रिपुरा तक में जाकर बसे हैं, पर जो भी कोल वहाँ हैं, वे अपना पुराना इतिहास बघेलखण्ड से ही जोड़ते हैं, इसलिए कोलों को इस विन्ध्यांचल के भू-भाग का प्राचीनतम रहवासी कहना अनुचित न होगा।

हमारे पास कोलों पर जो भी यहाँ के निवास के ऐतिहासिक स्रोत हैं, वह तीन प्रकार से मिलते हैं

- पौराणिक स्रोत
- किंवदन्तियाँ
- ऐतिहासिक स्रोत

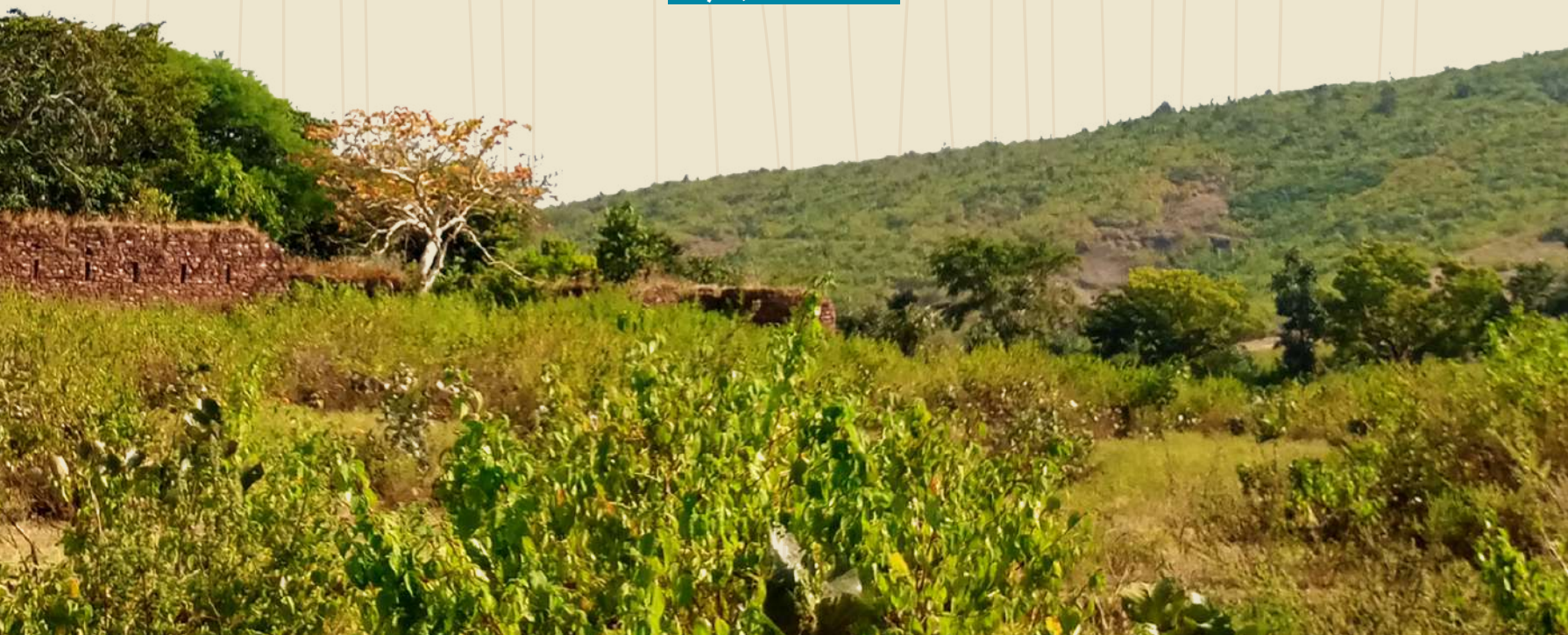

जनश्रुति

पौराणिक ग्रन्थों में रामायण, महाभारत एवं अन्य कई पुराण ग्रन्थ हैं, जो उनकी यहाँ उपस्थिति के प्राचीनतम प्रमाण हैं। उन ग्रन्थों में कई- कई तरह से कोलों की उत्पत्ति की तमाम कथाएँ हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख उत्पत्ति खण्ड में भी किया जा चुका है। जनश्रुति में कुछ मिथ कथाएँ और परम्पराएँ होती हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती हैं। इस तरह की कई कथाएँ पूर्व में दी जा चुकी हैं।

इतिहास पक्ष

इतिहास वह आधार होता है जिसकी अलग तरह से पहचान होती है। वह वैज्ञानिक तर्कों की कसौटी पर भी खरा होता है, और तीन तरह से प्रमाणित होता है-

- पुरातात्त्विक साक्ष्य
- जनश्रुति में कथाएँ
- पर्यटकों के यात्रा वृतान्त में वर्णन

आज कल तो किसी भी कालखंड की पुरातात्त्विक वस्तुओं के समय को कार्बन डेटिंग से ज्ञात किया जाने लगा है। अस्तु यदि हम महाभारत एवं पुराणों में वर्णित कथाओं के स्रोत के साथ अन्य पर गौर करें तो भी यहाँ कोलों के नाम के ऐसे अनेक गाँव हैं जो उनकी प्राचीनता के उदाहरण हैं। उसके नाम के साथ जुड़ा 'कोलगढ़ी' यह बता रहा है कि उस गाँव में कभी उनकी गढ़ी रही होगी। 'कोलगवां' से स्पष्ट है कि कभी वह कोलों के प्रमुखता वाली बस्ती का गाँव था। कोलगढ़ियाँ रोड का आशय उस मार्ग से है, जहाँ से होकर जाने में कोलों की एक गढ़ी बनी हुई मिलती है। सीधी जिले का 'कोल कटी' उस स्थान का परिचायक है, जहाँ कोल युद्ध में बहुत बड़ी संख्या में एक साथ मारे गए थे। इस तरह यहाँ अनेक ऐसे स्थान पाए जाते हैं जो उनकी प्राचीनता के परिचायक हैं। उनके गढ़ी-किलों को देखा जाय तो सतना जिले में जहाँ नरो पहाड़ की तलहटी में बनी भगदेवरा की गढ़ी आज भी कोलों की गढ़ी नाम से मशहूर है, जिसे किसी कोल राजा द्वारा निर्मित बताया जाता है। वहीं रीवा जिले के त्यौंथर में गढ़ी के कोल राजा की कोलई देव के रूप में अभी भी बरी-रोटी चढ़ाकर पूजा होती है।

इसी तरह रीवा जिले के ही अतरैला, डभौरा क्षेत्र में कोलों के चार प्राचीन राज्य थे, जहाँ गुढ़, लूका कोलहट, धूमल आदि स्थानों में उनकी गढ़ी के अवशेष हैं। उसी रीवा जिले में ही केवटी, नईगढ़ी, चचाई तथा सोहागी में भी उनकी गढ़ियाँ थीं, जबकि त्यौंथर के कोल राजा का किला तो आज भी टमस के किनारे सिर ऊँचा किए खड़ा है। इतना ही नहीं, तराई क्षेत्र से लगे चित्रकूट में भी बरगढ़, खोरबंधना, टउगा तथा शंकरगढ़ के पास गढ़बा नामक गाँव में कोलों की गढ़ी हैं।

इस तरह ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो कोल विन्ध्य क्षेत्र में बसने वाली अत्यन्त प्राचीन जाति है, जिसे नृतत्त्व एवं समाज शास्त्रियों ने आस्ट्रिक कोलारियन नाम दे दिया है।

कोल जनजाति की संस्कृति और इतिहास बहुत पुरातन है, क्योंकि सिंधु घाटी सभ्यता के उत्खनन में मिले अवशेषों से पता चलता है कि कोल जनजाति भी प्राचीन भारत में निवास करने वाली जाति थी और यही कारण है कि आर्यों के मध्य एशिया से यहाँ आने के पूर्व कोलों के उत्तर-पूर्व भारत में अनेक राज्य थे।

प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में श्वपच, चाण्डाल, बुक्कल, कोल्हटि, बुरुल आदि नाम आये हैं, इनमें कोल्हटि सम्भवत: कोल ही होंगे। विन्ध्य क्षेत्र में कोलों के मांडा, त्यौंथर आदि राज्य थे ही, पर उत्तरप्रदेश में भी सोनभद्र का वह किला कोलों का ही था, जिस पर तिलस्मपूर्ण उपन्यास 'चंद्रकांता' लिखा गया था। यह तो कोलों के राज्य हुए, पर जनश्रुति के अनुसार कोलों की उपजाति मवासियों का भी पाथर कछार में एक राज्य था, किन्तु बाद में अन्य वंश के राजाओं ने उनकी राज्य सत्ता छीन उनके सारे संसाधनों पर अधिकार जमा लिया।

देवी-देवता, पूजा विधि, उपासना गीत एवं मन्त्र

यूँ तो कोल यहाँ के प्राचीनतम या कहें कि आदिम वासी हैं और जंगल के किनारे छोटे वन क्षेत्र यानी कि जंगल और कस्बे के बीच वाले कूल क्षेत्र में रहते हैं, अस्तु अन्य जनजातियों के अपेक्षा वह दूसरे समुदायों के अधिक निकट होते हैं। यही कारण है कि कोलों की संस्कृति के साथ-साथ उनके कुछ देवी-देवता भी जहाँ अन्य समुदायों के देवालय में स्थापित हो गए हैं, वहीं दूसरे समुदाय के देवी-देवता हनुमान, संन्यासी, बरम, अघोरी आदि भी इनके उपासना और पुजाई में शामिल हैं, क्योंकि जब दो संस्कृतियाँ लम्बे समय तक समानान्तर चलती हैं तो एक-दूसरे को प्रभावित भी करती हैं।

कोलों एवं अन्य समुदायों के बीच के देवी-देवताओं की यह पहचान है कि अगर किसी देवालय में वाना, सांटु कील जड़ी खड़ाऊँ रखी है या लौह गुरदा सांकल आदि रखे हैं तो वह देवालय कोल देवताओं के ही होंगे। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी चबूतरे पर खड़ाऊ तथा जनेऊ रखा हो तो कोलों से इतर देवता बरम, चबूतरे में खड़ाऊँ चिमटा रखे हों तो संन्यासी व खैर का डंडा रखा है तो भैरव की पहचान होती है।

कोल समुदाय में अनेक देवी-देवता पूजे जाते हैं, क्योंकि जब भी वह किसी नए कूलन क्षेत्र में गए और वहाँ अपना कोलान बसाया तो उनके बाप-पुरखों से विरासत में मिले कुल के देवी-देवता तो साथ में गए ही, किन्तु कुछ गुनियों के सिर पर आकर आस-पास के भूत-प्रेत, खैर, संन्यासी, मसान, बघेसुर आदि भी उनसे नारियल रोट चढ़वाने लगते हैं। यही कारण है कि उस समुदाय में देवी-देवताओं की संख्या बढ़ती जाती है। वे अपने देवताओं की साल में एक या दो बार पुजाई करते हैं, जो चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी अथवा क्वार मास की अष्टमी को की जाती है।

यूँ तो कोल अपने देवालय में अपना जवां चैत्र मास की प्रतिपदा को बोकर नवमी को विसर्जन करते हैं। फिर भी कोई अन्य समुदाय का ग्रामवासी यदि सार्वजनिक देवालय में क्वार में भी यदि जवां बुवाता है तो गाँव के भुयार होने के नाते उस जवां के बुवाई से विसर्जन तक वे देवी की सेवा एवं जवां की देखभाल भी करते हैं।

कोल समाज प्रत्यक्ष में तो अन्य समुदायों के देवताओं की पूजा नहीं करते, न किन्हीं देवताओं की मूर्ति ही रखते, पर हनुमान, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु को भगवान के रूप में मानते अवश्य हैं। यही कारण है कि कोल-कोल की आपस में जब अपनी बिरादरी के व्यक्ति से भेंट होती है तो हाथ मिलाकर भले ही वह 'जोहार' या 'जय जोहार' कहते हों, पर अन्य समुदाय के लोगों से भेंट होने पर उनका अभिवादन भी अन्य लोगों की तरह राम-राम या जयराम जी का ही होता है।

उपजाति भुमिया एवं मवासियों के उपासना में कोलों से अलग कुछ अन्य देवता भी जुड़े हुए हैं, जिनमें भुमियों की निरंकाली एवं मवासियों की घोड़ामुखी प्रमुख हैं। इसी तरह ठकुरिया कोलों के भी रीवा जिले के तराई क्षेत्र में बसने के कारण कुछ देवता क्षेत्रीयता के अनुसार घट-बढ़ गए हैं, रीवा क्षेत्र के कुछ स्थानों पर भ्रमण करते समय भइसोखर माता नामक देवी भी मिली। यूँ तो यह कालिका-शारदा जैसी देवी ही हैं, पर भइसोखर शायद इसलिए कहा गया क्योकि यह पहले भैंसा की बलि लेती थी। अन्य उपजातियों में रउतिया, कठौतिहा आदि के देवी-देवता एवं पुजाई पद्धति लगभग एक जैसी ही है। कोलों के अपने देवता या तो उनके घर के एक कोने में चउरी बनाकर पधराये जाते हैं या फिर गाँव के सार्वजनिक देवालय में स्थापित होते हैं जो किसी प्राचीन बरगद, इमली, पीपल आदि पेड़ों के नीचे बनाए जाते हैं। यहाँ उनकी सबकी अलग-अलग चौरी बनाई जाती है, जिन्हें हर साल वर्षा ऋतु समाप्ति के बाद नवरात्रि के समय छाब लीपकर सुन्दर बना दिया जाता है। वहाँ उगे हुए पेड़ भी देव भूमि के पेड़ माने जाते हैं, जिनमें कुल्हाड़ी नहीं चलाई जाती।

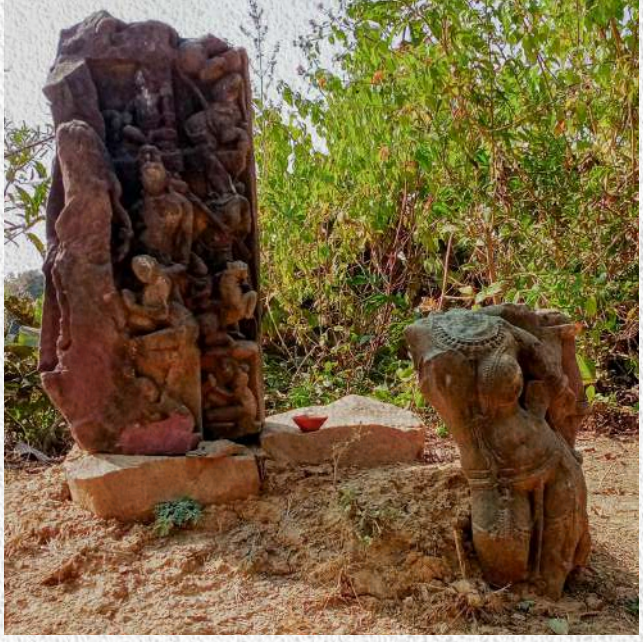

इनके देवताओं की भी दो श्रेणी होती है- भितरिहा और बहेरहा। इन देवी-देवताओं की स्थापना में एक विभाजन है कि इनमें जो देवी या देवता अपनी पुजाई में नारियल-रोट अठमाइन, कढ़ी-भात, बरा तथा बकरे की पुजाई लेते हैं उनकी घर के अन्दर स्थापना होती है और वह भितरिहा माने जाते हैं। किन्तु जो देवी-देवता मुर्गा, घेटुला (सुअर का बच्चा), अंडा आदि की बलि लेते हैं, वह बहेरहा देव या वीर की श्रेणी में आते हैं। उनकी चौरी घर के बाहर खोर में बनती है। लेकिन इनमें अपवाद के रूप में जोगनी एक ऐसी देवी हैं जो घर के अन्दर न तो देवालय में पूजी जाती हैं, न ही अन्य देवताओं की तरह घर के बाहर ही। बल्कि सबसे हटकर उसकी चौरी आँगन में बनती है, जहाँ प्रतीक स्वरूप दीवाल की खूँटी में करुआ चूड़ी लटका दी जाती है। कुछ लोग तो आँगन की भित्ति में ही अरिया बना उसे उसी में बैठा देते हैं और वहीं अठमाइन चढ़ाते हैं। किन्तु बहेरहा देवता अघोरी, संन्यासी, मसान, बघेसुर आदि माने जाते हैं, जिनके चबूतरे घर के बाहर खोर में बनाए जाते हैं। मसान तो साँप के रूप में पूजा जाने वाला देवता है, जिसका स्थान कोलिया की बाड़ के किसी पेड़ के नीचे होता हैं लेकिन बड़े-बूढों से चली आ रही परम्परा के अनुसार संन्यासी, मसान या प्रेत आदि कुछ ऐसे देवता भी होते हैं, जिनकी पूजा खेत में होती है। कोलों के अपने देवताओं की पुजाई दो तरह की होती है- कच्ची पुजाई और पक्की पुजाई।

कच्ची पुजाई लेने वाले देवी-देवताओं को नारियल, रोट, अठमाइन एवं कढ़ी, फुलौरी, बरा, भात, खीर आदि चढ़ाई जाती है। किन्तु पक्की पुजाई में बकरे की बलि दी जाती है। उस पुजाई में भी देवियों को जहाँ मुर्गी की मादा छौनी, मादा सुअर की घेटुली या बकरी की बच्ची की बलि दी जाती है, वहीं देवता को नर छउना, घेटुला एवं बकरा की बलि चढ़ाई जाती है। परन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ बलि चढ़ाने में नर-मादा का विभेद नहीं है।

भितरिहा देवता और उनकी पुजाई

हर घर में देवालय बैठाए जाते हैं, जो एक जैसे और अलग-अलग भी होते हैं। इनकी पुजाई इस प्रकार होती है -

जोगनी	-	अठमाइन
फूलमती	-	दोने में रखकर खीर
कालिका	-	पक्की पुजाई
शारदा	-	पक्की पुजाई
मरही	-	घेटुला (सुअर का मादा बच्चा)
खेर	-	बकरी का मादा बच्चा
बाबा	-	नारियल-रोट
दूल्हा देव	-	कढ़ी, फुलौरी, बरा, भात
मन्सा	-	नारियल-रोट
करुआ	-	नारियल-रोट

बहेरहा देवता और उनकी पुजाई

बाहर के देवताओं के चबूतरे घर से अलग खोर या चौगान में होते हैं, जिनकी पुजाई इस तरह होती है -

संन्यासी	-	नारियल-रोट, लँगोट, खड़ाऊँ, गांजा की चोगी
अघोरी	-	मुर्गा
भैरव	-	नारियल-रोट, चोगी
मसान	-	मुर्गी का अंडा
भैंसासुर	-	बकरा
दानव बाबा	-	रोट
प्रेत बाबा	-	नारियल
बघेसुर बाबा	-	मुर्गा
सुंघाबीर	-	नारियल

लोक देवी-देवता एवं उनकी पुजाई

चन्दी	-	बकरी का मादा बच्चा
कालिका	-	बकरी का मादा बच्चा
शारदा	-	पहले बकरी किन्तु अब अठमाइन
मरही	-	घेटुला (सुअर का मादा बच्चा)
रकत पियासी	-	मादा घेटुला
मसान	-	मुर्गी का अंडा
बघेसुर	-	मुर्गा
भैरव बाबा	-	नारियल-रोट, लँगोट और चोगी
भैंसासुर	-	बकरा
छत्रपाल	-	बकरा
अघोरी	-	मुर्गा
बरम बाबा	-	कच्चे चावल की खिचड़ी एवं खड़ाऊँ
नार सिंह	-	मेढ़ा बकरा

इस तरह कोल समुदाय अपने कोलान के सार्वजनिक एवं निजी देवालय में कई तरह के देवी-देवताओं की रोट, अठमाइन, नारियल, मुर्गा, घेटुला, बकरे आदि की बलि देकर पुजाई करता है, पर गांजा प्रतिबंधित होने के कारण अब तम्बाकू की चोगी ही चढ़ाई जाती है।

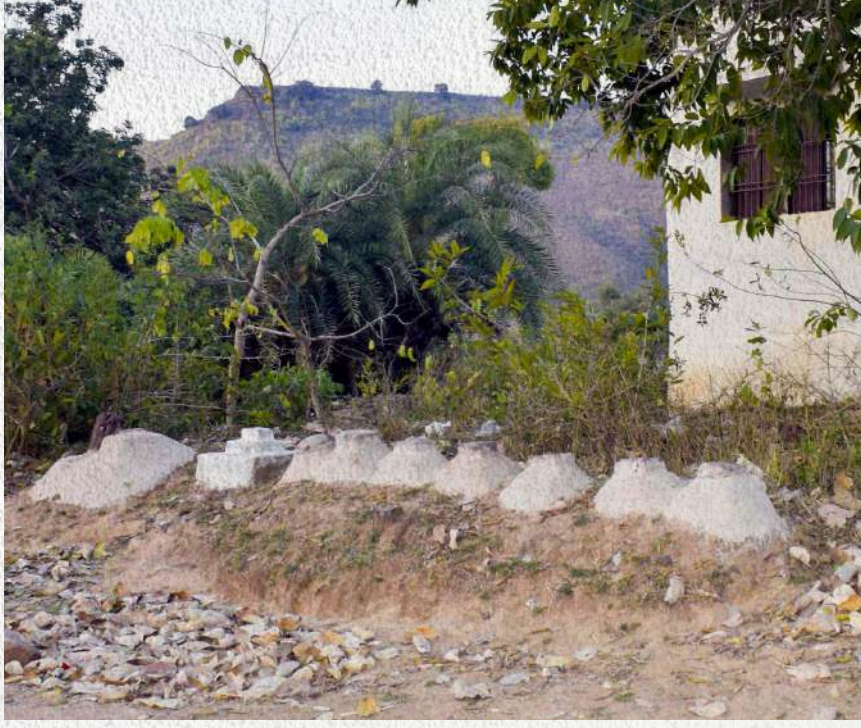

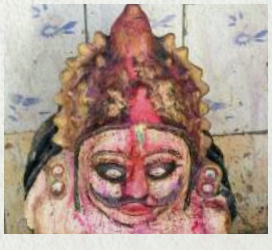

देवालय के प्रतीक चिह्न

प्रतीक चिह्न सार्वजनिक देवालय और निजी देवालय में दोनों में होते हैं, भी जो अलग-अलग देवताओं को समर्पित होते हैं। कालिका, शारदा, चन्दी, फूलमती आदि देवियाँ एक ही देवालय में छोटी-छोटी चौरी बनाकर स्थापित कर दी जाती हैं। पर दूल्हादेव, मन्सादेव का स्थान इनसे अलग होता है। इसी तरह सार्वजनिक देवालय में भी देवियाँ तो एक स्थान पर अलग-अलग चौरी बनाकर स्थापित की जाती हैं किन्तु संन्यासी, बरम, मसान, बघेसुर, छत्रपाल, भैंसासुर के अलग-अलग और दूर-दूर चबूतरे होते हैं।

देवियों के चौरी के समीप जहाँ सात-आठ फीट लम्बी लोहे की सांग होती है, वहीं देवता के देवालय में चार फीट का बाना। वह सार्वजनिक एवं निजी दोनों स्थान में गड़े रहते हैं। किन्तु संन्यासी के चबूतरे में खड़ाऊँ और चिमटा तथा बरम के चबूतरे में सिर्फ खड़ाऊँ रखी रहती है। गाय के पूँछ के बालों को सुतली की तरह ढेरा से कातकर और छोटी-छोटी कील जड़कर सांट बनाई जाती हैं, वह भी दोनों तरह के देवालय में रखी जाती है। सार्वजनिक देवालय के द्वार का प्रमुख देवता भैरव और पमरिया देव होते हैं, इसलिए द्वारपाल के प्रतीक के रूप में भैरव देव की चौरी में खैर की डाल या एक डंडा रखा जाता है। कुछ निजी देवालय में तो कील जड़ित खड़ाऊँ भी रखी जाती है, जिसे भाव आने पर पंडा पहनकर चलता है और गाल में बाना छेद लेता है।

इसी तरह कुछ पंडे भाव आने पर कील जड़ित गाय के पूँछ के बालों से बनी सांट को पीठ में मारकर अपनी पीठ लहूलुहान कर लेते हैं। पीठ में सांट मारते समय उनके घर में जितने देवता पूजे जाते हैं, उन सबका नाम लेकर वह अलग-अलग सांट मारते हैं।

देवी का बरुआ

जब घर की देवियों के पुराने पंडे की मृत्यु हो जाती है या वह बूढ़ा हो जाता है तो उसका स्थान नया पंडा ले लेता है। उस पंडे को भाव आने पर नया बरुआ कहा जाता है, किन्तु पक्का बरुआ वह तब माना जाता है, जब घर के देवालय में रखी सांग को अपने गाल में छेद लेता है। इसके पहले भी अलग-अलग देवताओं के नाम के पान के पाँच बीड़ा रखे जाते हैं और वह आँख में सात पर्त के कपड़े की पट्टी बाँधकर आता है, यदि अपनी देवी का बीड़ा उठा लेता है तो वह पक्का बरुआ माना जाता है।

देवी-देवताओं का स्वभाव

कोल समुदाय ने अपने इन तमाम देवी-देवताओं के स्वभाव को भी अलग-अलग श्रेणी में बाँट रखा है। वे अन्य समुदाय के देवालयों से आकर उनसे पुजाई लेने वाले देवताओं को देवता कहते हैं, पर अपने पूर्व पुरुषों को बीर। किन्तु इन सबको भी दो श्रेणियों में बाँट रखा है, जो इस प्रकार है-

- परेशान करने वाले उग्र प्रकृति के देवी-देवता या बीर
- रक्षा करने वाले दयालु प्रकृति के देवी-देवता या बीर।

उग्र प्रकृति के देवी-देवता या बीर

जालपी देवी	-	यह तरह-तरह के जाल फैलाकर या षड्यंत्र रचकर परेशान करने वाली देवी मानी जाती है, जिसके जाल में फँसकर भुक्तभोगी कष्ट उठाता रहे।
रकत पियासी	-	यह बीमार करके खून चूस लेने वाली या मार डालने वाली देवी मानी जाती है।
मरही	-	महामारी फैलाने वाली देवी।
मन्सा बीर	-	काम में व्यवधान उत्पन्न करने वाला ।
अघोरी	-	किसी की परवाह न करने और मनमानी करने वाला सर्वभक्षी देवता ।
परेत बाबा	-	अकारण ही लोगों को परेशान करने वाला।
संन्यासी	-	पुजाई न करने और सन्नसिहाई जमीन में खेती करने पर परेशान करने वाला देव।

रक्षक प्रकृति के देवी-देवता या बीर

जोगनी	-	रक्षा करने वाली देवी।
कालिका	-	रक्षा करने वाली देवी।
चन्दी	-	रक्षा करने वाली देवी।
शारदा	-	रक्षा करने वाली देवी।
देशहाई	-	गाँव से बाहर भी रक्षा करने वाली देवी।
बघउट बाबा	-	जंगल में जानवरों से रक्षा करने वाला।
सुंघा बीर	-	घर के भीतर बाहर की सारी बाधाओं को सूँघ कर जान लेने वाला बीर।
बउडऱा बीर	-	पेड़ पर चढ़कर उसमें रहने वाले भूत-प्रेतों को पकड़ लेने वाला।
करुआ	-	अंधेरे में भी बाधाओं को देख और तलाश कर रक्षा करने वाला।
करतार	-	तलवार से खेल या करतब दिखाकर रक्षा करने वाला।
सकरिहा बीर	-	लोहे की साँकल घुमा-घुमा और मार-मारकर भूत-प्रेतों को भगा देने वाला।
भइसासुर	-	मोटा-तगड़ा बहादुर और सभी विघ्न बाधाओं से मुक्ति दिला देने वाला।
घटबरिया बाबा	-	पहाड़ एवं नदी के घाट से जाते समय लोगों की रक्षा करने वाला बीर।

कोल समुदाय सदियों से इसी तरह की धारणा के अनुसार भय की स्थिति या उनके दयालुता के आधार पर तमाम देवी-देवताओं एवं बीरों को पूजता चला आ रहा है।

यह तो रहे रउतेल कठौतिहा कोलों के देवता एवं उनकी पुजाई की विधि जो रीवा, सतना, सीधी, कटनी, उमरिया आदि तमाम जिलों में पाये जाते हैं, किन्तु रीवा जिले के तराई वाला भाग जो त्यौंथर तहसील में आता है, वहाँ रउतिया से मिलता-जुलता कोलों का एक गोत्र ठकुरिया पाया जाता है। यूँ तो उनके देवी-देवता की भी पुजाई की विधि लगभग इसी प्रकार कच्ची-पक्की है और वह भी तरह-तरह के टोना-टोटका, मूठ आदि पर विश्वास करते हैं किन्तु क्षेत्रीयता के आधार पर कुछ अन्य देवता भी उनके देवालयों में देखे जा सकते हैं, इसलिए उनके देवताओं को अलग से दे रहे हैं। 80 वर्षीय मंगाली कोल ने बताया कि हमारे देवालय में- *फूलमती, जालपा, सोनमती, दखनी माता, शारदा, कालका, काली, और बरइन माता* आदि पूजी जाती हैं।

इसी प्रकार देवताओं में *दुलहा देव, बड़ा देव, नारसिंह, भैरम, बारा बीर, लोहरा बीर, मुनी बाबा, पहलमान बाबा, और संन्यासी बाबा* आदि पूजे जाते हैं।

इनकी पुजाई में लगने वाली सामाग्री के बारे में पूछे जाने पर श्री मंगाली ने कहा कि पुरखों के जमाने में तो सभी देवियों को सामलात रूप में एक बकरा चढ़ता था। यहाँ तक कि बाप-पुरखे बताते थे कि पहले हमारी शारदा देवी उनसे नरबलि लेती थी, जिसे बड़ी मुश्किल से बकरे लेने के लिए पुरखों द्वारा राजी किया गया था, पर अब तो सभी नारियल रोट अठमाइन ही लेते हैं। जिस तरह तराई के ठकुरिया कोलों के कुछ क्षेत्रीय आधार पर स्थानीय देवता हैं, उसी तरह सीधी, सिंगरौली में भी क्षेत्रीयता के आधार पर वहाँ के रौतिया एवं ठकुरिया कोलों में कुछ स्थानीय देवी-देवता भी पाए जाते हैं।

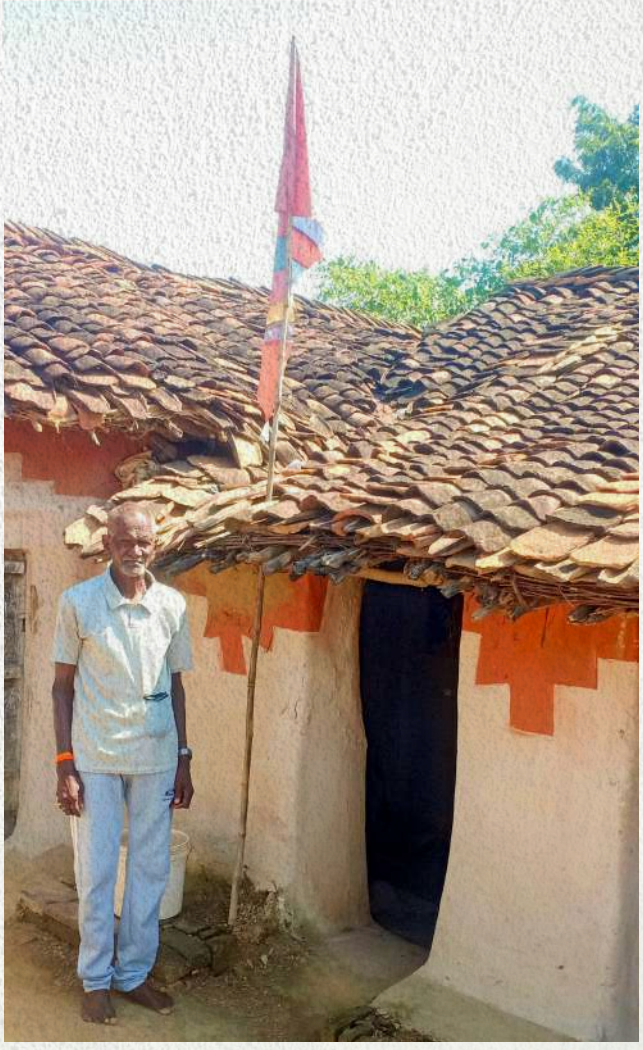

बनसती देवी	-	जंगल की देवी
बूढ़ी माई	-	चेचक रोकने वाली देवी
चौरंगी माई	-	पशु रोग की देवी
घासी घमसान	-	कोलों के पूर्व पुरुष
अहीर बाबा	-	जंगल के देवता
बड़का देव	-	हर वस्तु में व्याप्त रहने वाले देवता
ठाकुर देव	-	ग्राम देवता

उपजातियों के देवी-देवता एवं पुजाई

मवासी

कोलों की उपजाति होने के कारण उनकी ही तरह मवासी समुदाय में भी अनेक भितरहा एवं बहेरहा देवी-देवता होते हैं, जिनकी कच्ची और पक्की पुजाई की जाती है। उनमें कुछ देवी-देवता तो कोलों से मिलते-जुलते हैं पर कुछ क्षेत्रीयता के आधार पर उनसे भिन्न भी हो जाते हैं जो इस प्रकार हैं- *शारदा, घोड़ा मुखी, बड़ा देव, रकत पियासी, मरही, खेर और मसान।*

मवासी लोग शारदा, घोड़ामुही एवं बड़ादेव को जहाँ बकरे की बलि चढ़ाते हैं, वहीं मरही, रकत पियासी को घेटुले की बलि व मसान को मुर्गा चढ़ाया जाता है, पर खेर समूचे गाँव की देवी मानी जाती है जो गाँव की रक्षा के लिए घेटुला की बलि लेती है।

मवासी लोग हर वर्ष नया अनाज खाने के पहले सत्तर दिन में पकने वाला करधना नामक एक धान का चावल रांध और उसी को पीसकर रोट बना पहले भितरिहा देवों को चढ़ाते हैं, उसके बाद नया अनाज खाना शुरू करते हैं। किन्तु पूजा का चावल बाहर ही धोया जाता है, घर के भीतर नहीं। किसी परिवार में बरिहा नामक भूरा कद्दू भी चढ़ाया जाता है जो प्राचीन नर बलि का प्रतीक है। लेकिन इस भूरे कद्दू को चढ़ाने वाला परिवार उसे अपने बारी में नहीं उगाएगा, बल्कि किसी के खेत से चुराकर लाने और काटकर चढ़ाने की परंपरा है। इन भितरिहा देवताओं की पुजाई के समय उस देवालय वाले कमरे से बालिकाओं को बाहर रखा जाता है। उनकी मान्यता है कि यदि कन्या उस पुजाई को देख लेती है तो यह भितरिहा देवता विवाह के समय उसके साथ ससुराल चले जाते हैं और उस लड़की को परेशान कर वहाँ भी पुजवा लेते हैं।

देवी- देवता

भुमिया

कोलों और मवासियों की तरह ही कोलों की इस उपजाति भुमिया में भी तमाम तरह के देवी-देवता हैं। क्षेत्रीयता के आधार पर इनके देवता भी उनसे कुछ अलग तरह के हो जाते हैं, यथा- *निरंकालका, काली, देश काली, मरही, देसदाई, शारदा, कालका, बघेसुर, बरम, मसान और बाबा पण्डा।*

बाबा पण्डा हर परिवार के प्रमुख के पिता का पिता होता है, जिसे मरने के बाद पूज लिया जाता है और हर साल-मुर्गे की बलि दी जाती है। उनका मानना है कि यह बाबा पण्डा सभी देवताओं को मनाता पथाता रहता है, जिससे उसके परिवार में कोई बाधा न आये। इनके सभी देवी-देवता पहले बकरे की बलि लेते थे, पर अब देवी आठमाइन एवं देवता नारियल रोट में ही राजी हो गए हैं। भुमिया समुदाय का बघोत बाबा भी शाकाहारी है जो माड़ पसाए हुए चावल को लेकर इनकी जंगली जानवरों से रक्षा करता है। जनजातीय कोई भी, हो उसकी कमोवेश एक ही जीवन शैली है- धरती के सीमित संसाधनों का उपयोग। यही कारण है कि उनकी संस्कृति में जीव जगत के लाखों साल बने रहने की अवधारणा आज भी छिपी है। अस्तु भुमिया समुदाय के पुरखों ने भी उतनी ही जमीन अपने कब्जे में रखी, जितनी वे खोद खनकर उसमें खेती कर सकें। बाकी महुआ, तेंदू, चार, हर्रा, बहेरा, आँवला जैसी वनोपज ही उनकी आजीविका के साधन थे। घने जंगलों में बसने के कारण इनका औषधीय ज्ञान कोलों से कुछ अधिक है और झाड़-फूँक में अभी भी अटूट विश्वास करते हैं। जब कोई जड़ी-बूटी का जानकार या गुनिया बूढ़ा हो जाता है तो अपने बेटे-पोते या किसी जिज्ञासु व्यक्ति को जड़ी-बूटी या जंत्र-मंत्र का ज्ञान देकर अपना शिष्य बना लेता है। यह सारे मंत्र-टोटके और औषधियों का ज्ञान दीपावली से देवउठनी एकादशी तक ही दिया जाता है। यह मन्त्र विभिन्न रोगों में पढ़े जाते हैं, जैसे- सिर दर्द, पेट दर्द, बिच्छू काटने पर, साँप के काटने पर, सियार के काटने पर और गाय बैल के चरचरा रोग होने पर। भुमिया समुदाय कुछ बीमारियों में मंत्र पूरित जड़ी-बूटी भी बाँधता है, जैसे- गाय-बैलों के घाव में पड़े कीड़ों को मारने के लिए, पीलिया रोग को समाप्त करने के लिए और अतरी तिजारी चौथिया बुखार दूर करने के लिए।

देवी उपासना के भगत एवं गीत मंत्र

कोल ऐसा समुदाय है जो अपने देवालय में सर्वाधिक देवी-देवताओं की पूजा करता है। यदि वह अपना पुराना गाँव छोड़ कहीं अन्यत्र जाकर बस जाता है, तब भी उसके पुरखाती देवताओं के साथ-साथ वहाँ के स्थानीय देवता अघोरी, संन्यासी, भूत-प्रेत आदि भी उसके पूजा उपासना में शामिल हो नारियल रोट लेने लगते हैं। मोटे तौर पर देखा जाय तो जिस किसी गाँव में पुराने पेड़ों के नीचे की देवभूमि में सार्वजनिक देवालय हों, बहुत से चौरी-चौरे बने हों और प्रतीक स्वरूप उनमें सांट, सांग, बाना व कई रंग के झंडे लगे हों, तो सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि वह प्राचीन कोलारियन संस्कृति से जुड़े देवताओं के देवालय होंगे, क्योंकि यही उनके देवालयों की पहचान है। यहाँ तक की बघेलखण्ड के प्राय: हर गाँव के सार्वजनिक देवालय की पूजा और जवारे आदि बोने का काम कोल समुदाय का व्यक्ति ही करता है, जो कोलारियन समुदाय से आई उपासना विधि है। उस कार्य को 'भुयार गिरी' कहा जाता है। इसके लिए प्राचीन समय में इन भुयारों को किसानों के यहाँ से कुछ अनाज भी निर्धारित था। वह दोनों फसल आने के बाद (खरही- पूरा) एवं होली-दीवाली को खा-पीकर त्योहार मनाने के लिए (पियनी) के रूप में दिया जाता था। यहाँ तक कि प्राचीन समय में गाँव में आने वाली महामारी अथवा पशुओं में आने वाले वाद (खुरपका) जैसे संक्रामक रोग में पूजा-अनुष्ठान आदि करके गाँव छेकने का काम यह भुयार ही करता था, जिसमें गाँव की सीमा में चारों ओर मदाइन की बूंदे टपकाई जाती एवं खेर खूँट की पुजाई की जाती थी, इसे तपौना देना कहा जाता था।

कोल अन्य जनजातियों से अलग घने वनों में बसने के बजाय उसके किनारे मैदान में बसने वाला एक ऐसा समाज है जो कस्बों से अपनी समीपता रखते हुए अपना रहवास बनाता है, जिससे वह जंगल से लकड़ी प्राप्त कर उसे किसी कस्बे में बेच सके। अस्तु वह बाहर से आकर यहाँ बसी अन्य जातियों के सम्पर्क में भी अधिक रहा है। यही कारण है कि प्रकृति पूजक होते हुए भी उनकी संस्कृति में मिला-जुला प्रभाव है और पूजा-उपासना में अपने देवताओं के साथ-साथ बरम, अघोरी, संन्यासी आदि बहुत से देवता शामिल हैं। कोलों के भगत गीतों और झाड़-फूँक के मंत्रों में भी पारम्परिक देवी-देवताओं के साथ-साथ अन्य देवता शामिल हैं। कोलों का एक त्योहार बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, वह है- चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से अष्टमी तक की पूजा-उपासना एवं नवमी को जवारे का विसर्जन। उस समय अधिकांश कोल घर के देवालय या सार्वजनिक देवालय में जवारा बोते हैं, इसलिए आठ दिन तक जवारे के पण्डे का व्रत भी चलता रहता है। दिन भर वह पंडा व्रत करके रात्रि में स्वयं बनाकर रोटी और गुड़ खाएगा। प्रतिदिन अड़ोस-पड़ोस के लोग आकर देर रात्रि तक भगत (देवीगीत) भी गाते हैं। खासकर तीज, पंचमी एवं सप्तमी जैसी विषम तिथियों को भगत अवश्य गाई जाती है। उनकी भगत गीत की एक पंक्ति में तो उपासक की अपनी समस्या रहती है और फिर दूसरी पंक्ति में अनेक देवी-देवताओं के पराक्रम का वर्णन एवं प्रशस्ति वाचन। पर कुछ ऐसे भगत गीत भी हैं, जिसमें किसी देवी उपासक का देवी से सवाल जवाब के रूप में सम्वाद भी रहता है।

भगत गीत

कउन देव तोरे अगुआ रे देव अगुआ रे,
कउन अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ।
छत्रपाल देव अगुआ रे देव अगुआ रे,
ओईं अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ।
शारद माता अगुआ रे देवी अगुआ रे,
ओईं अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ॥
काली माता अगुआ रे देवी अगुआ रे,
ओईं अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ।
खेर भमानी अगुआ रे देवी अगुआ रे,
ओईं अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ॥
जोगनि माता अगुआ रे देवी अगुआ रे,
ओई अगिन हुम लेंय काल जोगी भैरम रे ।

भावार्थ- *हे देवालय के द्वारपाल! काल योगी भैरव बताओ कि तुम्हारा प्रमुख देवता कौन है, जो आग का होम ग्रहण करेगा? मेरे तो छत्रपाल बाबा प्रमुख देवता हैं, जो सबसे पहले होम को ग्रहण करेंगे। मेरी तो शारदा माता प्रमुख हैं, जो आग में डाले गए होम को सबसे प्रथम ग्रहण करेंगी। मेरी तो काली माता प्रमुख हैं, जो आग में डाले गए होम को ग्रहण करेंगी। मेरी खेर भवानी प्रमुख हैं, जो आग में डाले होम को ग्रहण करेंगी। मेरी तो जोगनी माता प्रमुख हैं, जो आग में डाले घी को ग्रहण करेगी।*

इस तरह भगत गायक क्रमश: हर देवता का आह्वान करते भगत गीत आगे बढ़ता जाता है।

मोर जबा लहरिया लेय, माई तोरे मढ़िया माँ।
एक न आबय मइया जोगनी,
ओहू क लाव लेबाय, माई तोरे मढ़िया मा।
मोर जबा लहरिया लेय माई तोरे मढ़िया मा।
एक न आबय दुर्गा माता, ओहू क लाबा लेबाय
माई तोरे मढ़िया मा॥
मोर जबा लहरियाँ लेय, माई तोरे मढ़िया मा।
एक न आबय चण्डी माता, ओहू क लाव लेबाय,
माई तोरे मढ़िया मा।
मोर जबा लहरियां लेय माई तोरे मढ़िया मा॥

भावार्थ- *मेरा जवारा देवी माता की मढ़िया में लहरा रहा है। यहाँ और तो सभी दिख रहे हैं, पर योगनी माता नहीं दिख रही; उन्हें भी यहाँ बुलालो। सभी इस जवारे में दिख रहे हैं, पर कालिका माता नहीं दिख रही; उन्हें भी बुला लो। सभी इस जवारे में दिख रहे हैं, पर चंडी माता नहीं दिख रही; उन्हें भी यहाँ बुला लो। मेरा जवारा देवी माता के मढ़िया में लहरा रहा है। इस तरह भगत गीत गाने से कभी-कभी किसी बरुआ के सिर पर देवी सवार भी हो जाती हैं और जब पुजाई करने वाले पूछते हैं कि जो हमने अठमाइन नारियल चढ़ाया, वह मिला, तो अपनी संतुष्टि का संकेत भी करती हैं। पर अब तीसरी भगत भी देखें, जिसमें देवी के लिए समस्त वस्तुएँ बनाने और प्रदाय करने वाले भी सम्मिलित हैं।*

मइया मोर नचय अगनमा,
तन भिजय पसिनमा।

नचत-नचत कुम्हरा घर आई,
कलसा मोर भेजाव ना,
तन भिजय पसिनमा।
मइया मोर नचय अगनमा,
तन भिजय पसिनमा॥

नचत-नचत बनिया घर आई,
नरियर मोर भेजाव ना,
तन छुटय पसिनमा।
मइया मोर नचय अगनमा,
तन छुटय पसिनमा॥

नचत-नचत लोहरा घर आई,
सांग तय मोर भेजाव ना,
तन छुटय पसिनमा।
मइया मोर नचय अगनमा ,
तन छुटय पसिनमा॥

भावार्थ- *मेरी देवी माता आज आँगन में नृत्य कर रही हैं और शरीर में पसीना छूट रहा है। वह नाचते-नाचते कुम्हार के घर गईं और बोली कि जवारे बोने वाला मेरा कलश तैयार करो। वे नाचते-नाचते बनिया के घर गईं और बोली कि मेरा नारियल शीघ्र ही पठवाओ।*

वे नाचते-नाचते लोहार के घर गईं और बोलीं कि मेरी सांग शीघ्र बनाकर भिजवाओ। देवी माँ आँगन में नृत्य कर रही हैं और शरीर में पसीना छूट रहा है। अगला भगत गीत शारदा माता का है, जो मैहर में विराजमान हैं।

उचे सिंघासन शारद बइठी,
कर सोलह सिंगार हो मा।
माथ म उनके सेंदुर सोहय,
बिंदिया सोहय लिलार हो मा॥
मइया के कान कुंडल सोहय,
ओठबन सोहय गुलाल हो मा।
बड़ी-बड़ी अखियाँ कजरा सोहय,
गरे म मोतिन हार हो मा॥
कम्मर मा करधनिया सोहय,
एड़ी महाउर लाल हो मा।
दस अंगुरी दस मुंदरी सोहय,
बिदिया सोहय लिलार हो मा॥

कहां बिराजी मइया शारदा,
कहां बिराजे हनुमान हो मा।
मइहर मढ़िया मइया शारदा,
मंदिर बिराजे हनुमान हो मा॥
काह चढ़त है मइया शारदा,
काह चढ़य हनुमान हो मा।
नरियर चढ़त है मइया शारदा,
लड्डू चढ़य हनुमान हो मा॥
को तोहि पूजय मइया शारदा ,
को पूजय हनुमान हो मा।
सब कोऊ पूजय मइया शारदा,
बाम्हन पूजय हनुमान हो मा॥

भावार्थ- *ऊँचे सिंहासन पर माँ शारदा सोलह श्रृँगार करके बैठी हैं। उनके माथे पर सिंदूर और बिंदिया शोभा दे रही है। माँ के कानों में कुंडल चमक रहे हैं और ओठों पर गुलाल लगा हुआ है। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में काजल लगा हुआ है। गले में मोती का हार सुशोभित है। उनके कमर में तो करधनिया शोभायमान है पर एड़ी में लाल महावर लगा हुआ है। उनकी दशों उँगलियों में अँगूठी सुशोभित है। माँ शारदा कहाँ विराजी हैं और कहाँ हनुमान जी विराजे हुए हैं। मैहर की मढ़िया में माँ शारदा विराजी हैं और मन्दिर में हनुमान जी। माँ शारदा की पूजा में क्या चढ़ाया जाता है और क्या हनुमान जी के? माँ शारदा को नारियल चढ़ता है, किन्तु हनुमान जी को लड्डू चढ़ाए जाते हैं। शारदा माता की पूजा कौन करता है और कौन हनुमान जी की? माँ शारदा को सभी लोग पूजते हैं, पर हनुमान जी को ब्राह्मण पूजते हैं।*

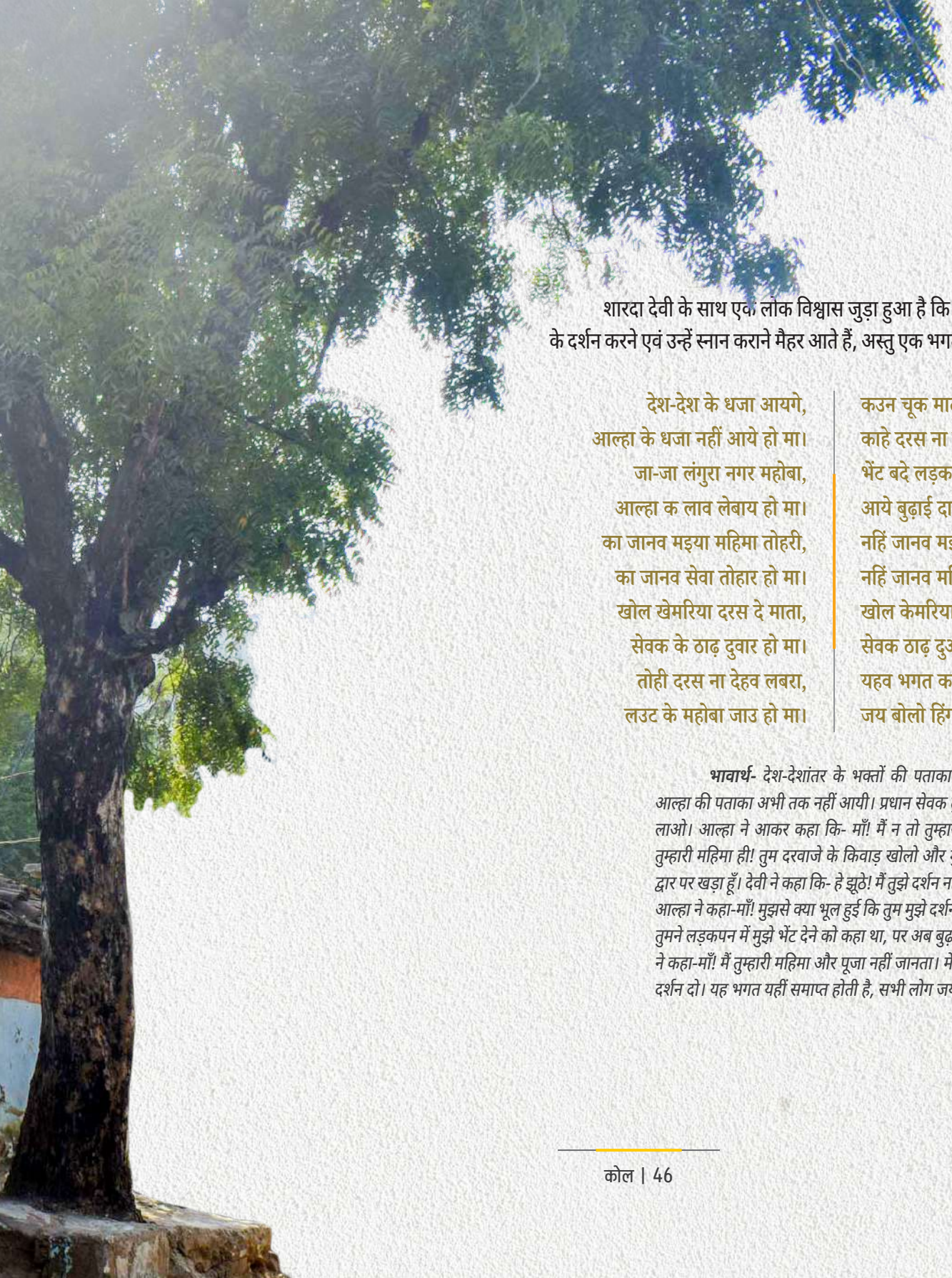

शारदा देवी के साथ एक लोक विश्वास जुड़ा हुआ है कि आल्हा प्रतिदिन माँ शारदा के दर्शन करने एवं उन्हें स्नान कराने मैहर आते हैं, अस्तु एक भगत गीत आल्हा पर भी देखें-

देश-देश के धजा आयगे,
आल्हा के धजा नहीं आये हो मा।
जा-जा लंगुरा नगर महोबा,
आल्हा क लाव लेबाय हो मा।
का जानव मइया महिमा तोहरी,
का जानव सेवा तोहार हो मा।
खोल खेमरिया दरस दे माता,
सेवक के ठाढ़ दुवार हो मा।
तोही दरस ना देहव लबरा,
लउट के महोबा जाउ हो मा।

कउन चूक माता मोसे परगय,
काहे दरस ना देहे हो मा।
भेंट बदे लड़कइयां म लबरा,
आये बुढ़ाई दार हो मा।
नहिं जानव मइया सेवा तोहरी,
नहिं जानव महिमा तोहार हो मा।
खोल केमरिया दरस दे माता,
सेवक ठाढ़ दुआर हो मा।
यहव भगत का भोग लगत है,
जय बोलो हिंगलाज हो मा।

भावार्थ- *देश-देशांतर के भक्तों की पताकाएँ मेरी मढ़िया में आ गये, पर आल्हा की पताका अभी तक नहीं आयी। प्रधान सेवक तुम जाओ और आल्हा को बुला लाओ। आल्हा ने आकर कहा कि- माँ! मैं न तो तुम्हारी पूजा-उपासना जानता हूँ, न तुम्हारी महिमा ही! तुम दरवाजे के किवाड़ खोलो और मुझे दर्शन दो। मैं तुम्हारा सेवक द्वार पर खड़ा हूँ। देवी ने कहा कि- हे झूठे! मैं तुझे दर्शन नहीं दूँगी। तुम महोबे लौट जाओ। आल्हा ने कहा-माँ! मुझसे क्या भूल हुई कि तुम मुझे दर्शन न दोगी। माँ शारदा ने कहा कि तुमने लड़कपन में मुझे भेंट देने को कहा था, पर अब बुढ़ापे में लौट कर आये हो। आल्हा ने कहा-माँ! मैं तुम्हारी महिमा और पूजा नहीं जानता। मेरी भूल-चूक को माफ करो और दर्शन दो। यह भगत यहीं समाप्त होती है, सभी लोग जय हिंगलाज बोलो।*

लोक मानस में धन-धान्य के साथ-साथ देवी माता को संतान देने वाली भी माना जाता है। इस भगत गीत में देवी की महिमा का बखान देखें-

मइया के दुआरे एक तिरिया रोवय,
अंसुअन बह जल धार हो मा।
धौ तोही सास ननद दु:ख दीन्हिन,
धौ सइयां दु:ख दीन्ह होमा।
मोरे भवन मा काहे रोये तिरिया,
जियरा क भेद बताव होमा॥
ना मोहि सास ननद दु:ख दीन्हिन,
ना सइया दु:ख दीन हो मा।
टोला परोसे के बांझ कहत हैं,
या दु:ख सहो न जाय हो मा॥
जा-जा तिरिया अपने भमन का,
तोही बालक हम देबय हो मा।

भावार्थ- *देवी माँ के द्वार पर एक स्त्री रो रही है, जिसके आँखों से आँसुओं की धार बह रही है। जब देवी माँ ने पूछा कि तुम क्यों रो रही हो? क्या तुम्हें तुम्हारी सासू ने या ननद ने कोई कष्ट दिया है या फिर तुम्हारे पति ने? आखिर तुम मेरे मढ़िया के द्वार पर क्यों रो रही हो? अपने मन की बात मुझसे कहो। उस स्त्री ने कहा कि देवी माँ न, तो मेरी सासू या ननद ने मुझे कभी कुछ कहा और न ही मेरे पति ने। मेरा तो दु:ख यह है कि पास-पड़ोस के लोग मुझे बाँझ कहते हैं। बस यही असहनीय पीड़ा मेरे लिए कष्टदायक है। देवी ने कहा-तुम चिंता न करो और अपने घर जाओ, मैं तुम्हें तुम्हारे बालक होने का आशिर्वाद दे रही हूँ।*

इस तरह बहुत सारे देवी उपासना के भगत गीत हैं। जो कोल समुदाय द्वारा चैत्र माह की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक गाए जाते हैं।

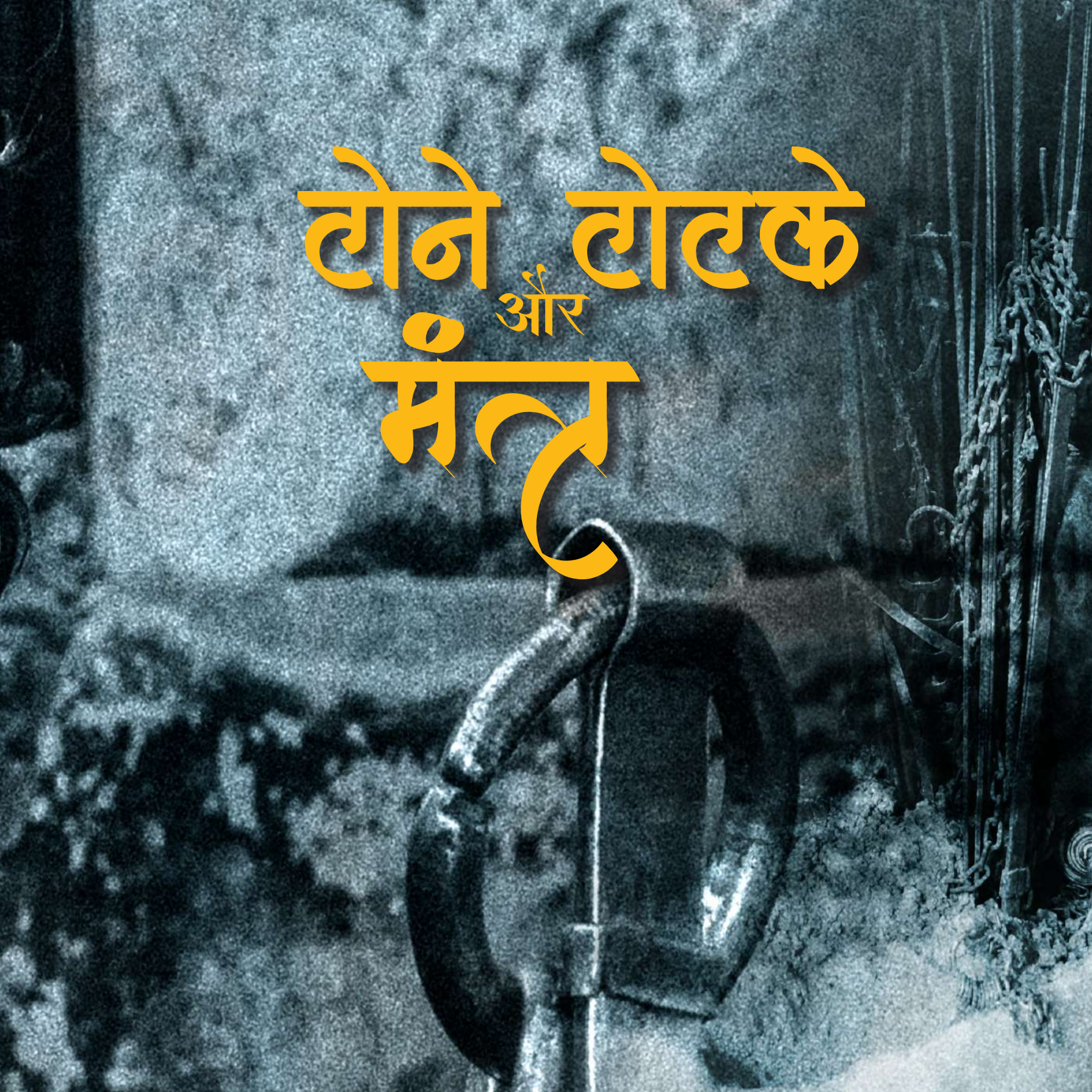
टोने टोटके
और
मंत्र

टोने-टोटके और मंत्र

कोल समुदाय न सिर्फ अनेक प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करता है, बल्कि वह एक ऐसा समुदाय है जो सबसे अधिक टोना-टोटका एवं झाड़-फूँक पर विश्वास भी करता है। उसने झाड़-फूँक के लिए कई तरह के मंत्र इजाद कर रखे हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा में चलते आ रहे हैं।

इन झाड़-फूँक करने वालों को बघेलखण्ड में पंडा, गुनिया या बरुआ कहा जाता है। झाड़-फूँक में प्रयुक्त इन मंत्रों को कारगर बनाए रखने के लिए गुनिया हर वर्ष दीपावली से लेकर देव अनुष्ठानी एकादशी तक प्रतिदिन दीप जलाकर उनका उच्चारण करते हैं। इस क्रिया को मंत्रों का जगाना कहा जाता है। कोल गुनियों का कथन है कि झाड़-फूँक के समय सभी मंत्र एक ही साँस में पढ़े जाते हैं, तभी वह कारगर होते हैं, लेकिन जब गुनिया बहुत वृद्ध हो जाता है और एक साँस में मंत्र पढ़कर झाड़-फूँक करने में अपने को असमर्थ पाता है तो फिर अपने पुत्र, भतीजे, दामाद या किसी अन्य जिज्ञासु शिष्य को निर्जन स्थान में ले जाकर मंत्र सिखा देता है। कोलों के अनुसार इस नए बरुआ को मंत्र सिद्ध करने हेतु कठिन साधना करनी पड़ती है, तब वह मंत्र सिद्ध होता है। कुछ मंत्र साधना की क्रियाएँ तो गले के बराबर पानी में खड़े होकर होती हैं। मंत्र द्वारा उपचार करने के लिए पंडा को कांस का डंठल या हँसिया, सरौता आदि किसी लौह वस्तु को हाथ में लेकर झाड़ना पड़ता है और सिर दर्द या बिच्छू काटने में तो कभी-कभी मंत्र पढ़ता हुआ गुनिया होम की गई वस्तु की भभूत भी मलता जाता है। पर यही सब क्रियाएँ उनकी उपजाति भुमिया में भी पाई जाती हैं। कोलों के यह मंत्र कई तरह की आपदाओं या बीमारियों के झाड़-फूँक में उपयुक्त माने जाते हैं।

बिच्छू काटने, साँप काटने, कुत्ता के काटने, सियार के काटने, आधा सिर दर्द, पेट दर्द, भूत उतारने, मूठ उतारने, मंत्र द्वारा ओला रोकने, जानवरो के घाव के कीड़ा मारने, जानवरों के ही अधरंगा रोग दूर करने, मूर्छा दूर करने, अलसी का विष उतारने और आँख का दर्द आदि अनेक रोगों का उपचार मंत्रों द्वारा करते हैं।

ये मंत्र ऐसे हैं, जिन्हें जानने के लिए कितना भी अनुनय-विनय किया जाय, किन्तु अमूमन गुनिया-पंडा बताने में कतराते रहते हैं। लेकिन कुछ मंत्र हमने उनसे प्राप्त कर ही लिये हैं, जो यहाँ दिए जा रहे हैं।

इन मंत्रों के उच्चारण समाप्त होने के पश्चात् अक्सर 'गउरा-महादेव की दोहाई' कहा जाता है।

बिच्छू का जहर उतारने का मंत्र

इस मंत्र को पढ़ने के पहले यदि हाथ में बिच्छू ने काटा हो तो कन्धे के पास से किसी अंगोछे से कस-कसकर मंत्र पढ़ते हुए बिच्छू के विष को उतारकर काटे हुए स्थान तक लाया जाता है और यदि पैर में काटा हो तो उसे जंघा से एड़ी के ऊपर तक लाते हैं। फिर हाथ या पैर को जमीन पर एक-दो बार पटका भी जाता है। *मंत्र देखें -*

उरई के ऊपर कुरई, कुरई के ऊपर खरिहान।
उतर उतर बीछी नहिं लइल्याहो तोर परान॥
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई।

दूसरा मंत्र :

छह भूरी छह कारी, छह दुम्मदारी
छह ब्रम्हा की औतारी।
चली छतीसउ गंग नहाय।
गंग के तीरे कदम क बिरबा।
ऊपर बीछी लहराय, तरे मंत्र कुहकुहाय ।
उतर उतर बीछी डंक छोड़ भुइ आव।
आबत होइहैं लीलकण्ठ, मरिहै डंक समेत।
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई।

पशुओं के रोग दूर करने का मंत्र

पशुओं को कई तरह के रोग होते है, जिन्हें इस मंत्र से झाड़ा जाता है।

लोहारिन बिटिया तोर बाप कहाँ गये है?
खाख कोइला लेंय।
खाख कोइला का करी?
छप्पन छूरी गढ़ी।
छप्पन छुरी का करी?
चरचरा रोग काटी,
बाद रोग काटी,
तिलमन रोग काटी।
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई॥

पेट दर्द रोकने का मंत्र

पेट दर्द प्राय: अधिक भोजन या अन्य तरह के उदर विकार से होता है, जिसे इस मंत्र से झाड़ा जाता है।

अत्थर पत्थर केर सिलउटी,
गढ़ पर्वत कय जीर।
बाटन बइठी शारद माता,
हरय पेट कय पीर।
गउरा पार्वती महादेव की दोहाई।

आँख आने का दर्द रोकने का मंत्र

आँख आना यानी आँख के लाल होने के दर्द को दूर करने के लिए सात नमक की डली ली जाती है और हर बार मंत्र पढ़ फिर उन सातों डली को क्रमश: उसके ऊपर घुमाकर तथा उतारकर फेंका जाता है। *मंत्र देखें -*

समुद्र-समुद्र म दीप,
दीप म गड़ा खूंटा।
वमा बंधा नीला नाटा।
ओखे चार आँखी,
दुइ काली दुइ लाली,
लाली लइगा, काली दइगा।
गउरा पार्वती महादेव की दोहाई।

आधा शीशी (सिर) दर्द का मंत्र

इस तरह के दर्द को उतारते समय देवालय की भभूत मलते हुए यह मंत्र पढ़ा जाता है।

समुद्र, समुद्र के ऊपर दीप,
दीप के ऊपर करबा।
करबा ग फूट, आधी गय टूट।
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई।

अलसी का विष मारने का मंत्र

अलसी का पौधा या फूल इतना विषैला होता है कि उसे खा लेने से गाय-बैल मर जाते हैं। गुनियों की मान्यता है कि अगर इस मंत्र से उपचारित जल को अलसी के पौधे पर छिड़क दिया जाय तो फिर उसका विष नहीं लगता।

हर मारव हरइली मारव,
मारव जुआ कय ज्वात।
जामत पेड़ आरसी कय मारव,
करहत मारव विष गंगा बहिजाय।
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई।

मूर्छा दूर करने का मंत्र

मूर्छा अमूमन बहुत अधिक सदमे के कारण आती है, जिसमें मनुष्य अचेत-सा हो जाता है। मूर्छा का मंत्र पढ़कर गुनिया 'विषकरा-ररा' कहकर मुँह में पानी का छींटा भी मारता है।

अमन दमन बतीस दमन,
सुन-सुन रे तय करे करुआ।
जगत माल के बामन बरुआ।
याकय करुआ बार बरोरय,
याकय मरदय छाती।
जे बालक कय सेवा करय,
तुरतै लउट परान । बिस्करा ररा ररा ...

टोना-मूठ झाड़ने का मंत्र

गुनिया-पण्डों का मत है कि टोना-मूठ लगने से व्यक्ति दिन-प्रतिदिन दुबला और कमजोर होता जाता है। उसे दूर करने के लिए गुनिया एक पैर पर खड़े होकर इस मंत्र से झाड़ते हैं।

भइसासुर कय अमली उलट पलट गई डार
ऊपर करुआ बिराजै तर भइसा रखवार।
वा भइसा ना जान्या जेहि लादय तेली कलार।
बारा भाठी मद पियय सोरा बोकरा खाय।
लोह कय टोरय लोह साँकर भूतन करय आहार।
करुआ बीर कय दोहाई॥
गउरा पार्वती महादेव कय दोहाई॥

भूत उतारने का मंत्र

भूत लगने पर शरीर में बेचैनी और अकुलाहट-सी होती है। उसे उतारने के लिए गुनिया द्वारा हँसिया या सरौता अथवा काँस के एक हाथ के डंठल को लेकर झाड़ा जाता है।

काली कंकाली महा काली ,
ब्रह्मा कय बेटी इंद्रर कय साली।
बारा भूत करय बियारी।
मोरी कालका की दोहाई।
उन दो-गुन ठुनगुन
नई डोर से धीर चलाई।
न बदना न बेउहार।
भूतय मारे भूतय डासे
भूतय मोर अहार॥
नार सिंह कय दोहाई।

काली खप्पर बाँधने का मंत्र

क्वार और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तक कोल समुदाय द्वारा अक्सर जवारे बोए जाते हैं और उनको नदी-तालाब में विसर्जन के समय काली नृत्य भी होता है, जिसमें एक व्यक्ति माता काली का चेहरा एवं काले वस्त्र पहन हाथ में नंगी तलवार लेकर उनका रूप बना लेता है और दूसरा दोनों हाथ में खप्पर ले लेता है। इस तरह दोनों नृत्य करते हैं। उस नृत्य के पहले खप्पर में आग जला कर उसे बाँधने का उपक्रम करना पड़ता है। लोगों का कथन है कि मंत्र पढ़ देने से खप्पर का निचला भाग ठंडा हो जाता है, जिससे खप्पर लेने वालों का हाथ नहीं जलता। पर कुछ लोगों का कथन है कि घड़ा का पेंदा जिसका खप्पर बनता है, वह ताप का अधम संचालक है। अस्तु जब कुछ लकड़ियाँ जल चुकती हैं तो नीचे राख बन जाती है, तब ऊपर लकड़ी भले जलती रहे फिर भी नीचे आँच नहीं जाती और खप्पर का पेंदा ठंडा ही रहता है। खप्पर बाँधते समय जो मंत्र पढ़ा जाता है, वह इस प्रकार है-

एक अचम्भा मैं सुनेव कि,
गूलर कर्वी खाय।
सात समुद्र का पानी पी के,
बरातरी पगुराय॥
जल बांधव जलबाई बांधव,
बांधव जल कय काई।
अउ हाथे का खप्पड़ बांधव,
हनुमान बीर की दुहाई॥
एक अचम्भा मय सुनेव कि,
कुआं म लागी आग।
पानी पानी सब जरा कि,
मछरी खेलय फाग॥
जल बांधव जलवाई बांधव,
बांधव जल कय काई।
हंडी पर कय पुटकी बांधव,
ऊपर भाफ न जाई॥
एक अचम्भा मय सुनेव कि,
गाडर गमने जाय।
अगल बगल हाथी बंधे,
ऊंट घसीटत जाय॥
जल बांधव जलबाई बांधव,
बांधव जल कय कई।
जरत आग का खप्पड़ बांधव,
एकव आंच न जाई॥
एक अचम्भा मय सुनेव कि,
लगी रजाई आग।
सुई सुई सब जल गईं,
डोभ म लाग न दाग।

इस तरह खप्पर जलाने वाला मंत्र पढ़ता जाता है और दोहों का उच्चारण करता जाता है। साथ ही ऊपर जल रही लकड़ी को बार-बार खूंथता भी है। इस क्रिया से पहले खप्पर का पेंदा गर्म होता है, फिर ठंडा हो जाता है।

जनसांख्यिकी

यूँ तो कोल समुदाय मध्यप्रदेश के लगभग तेईस जिलों में निवास करता है, पर रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, कटनी एवं उमरिया में इनकी संख्या सर्वाधिक है। यहाँ अन्य जनजातियों के मुकाबले कोलों का प्रतिशत बराबर का है, क्योंकि अन्य जनजातियाँ जहाँ घने जंगलों में ही पाए जाते हैं, वहीं कोल मैदानी भाग में भी बसा हुआ है, किन्तु इनकी उपजाति भुमिया और मवासी उस अनुपात में कम ही हैं। सरकारी गणना समग्र जनजाति की है जिस अनुसार 2011 में जिलेवार समस्त जनजाति की जनसंख्या इस प्रकार थी-

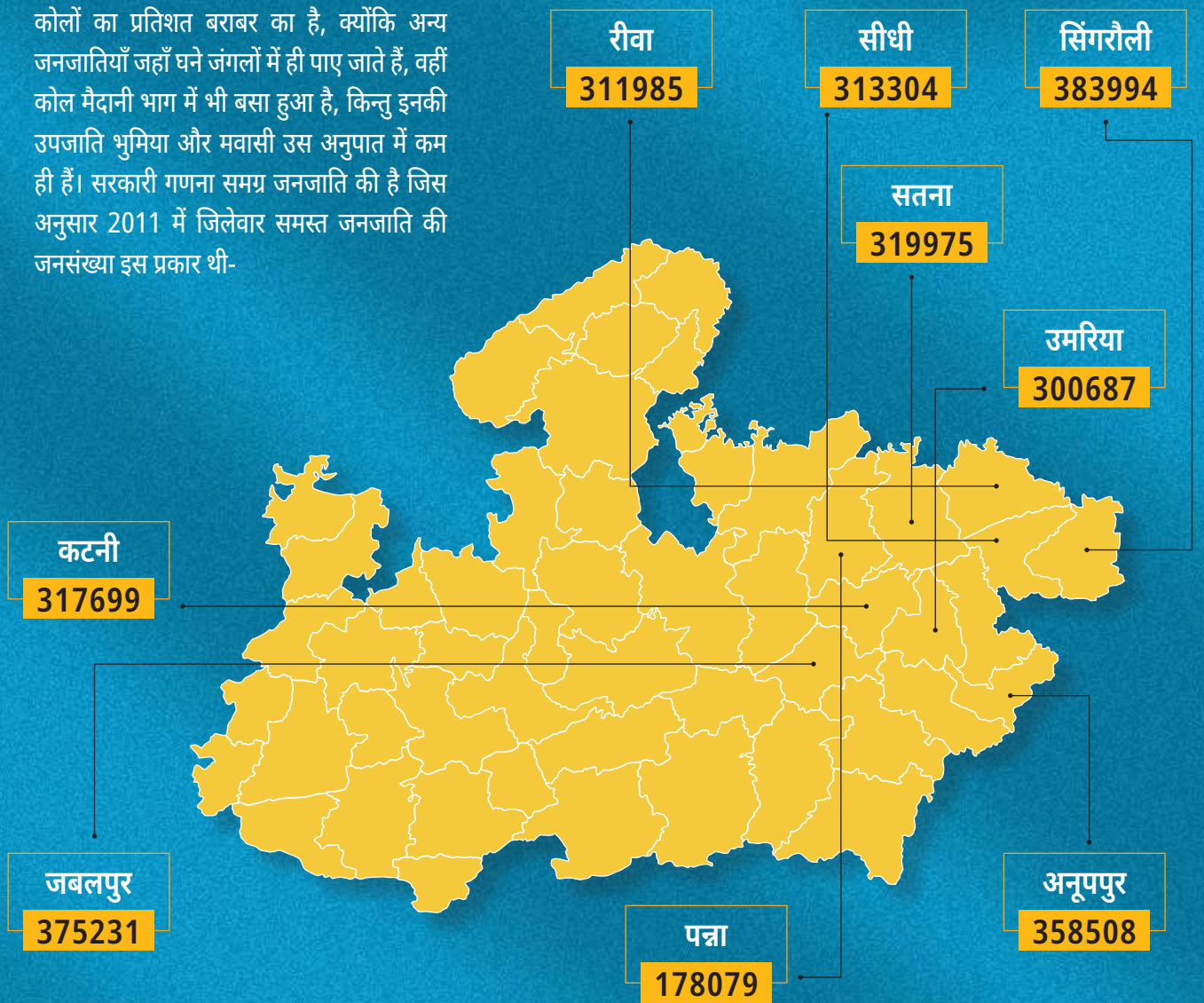

पूरे मध्यप्रदेश में आदिम जनजाति एवं विकास अनुसंधान संस्थान, भोपाल के सन् 2011 के (अनुसूचित जनजाति जनसंख्या) गणना वाले आँकड़े के अनुसार अकेले कोल समुदाय की संख्या 1167964 है, क्योंकि वर्ष 2011 में यह गणना जनजातियों की अलग-अलग जाति के अनुसार भी हुई थी, जिसका विवरण इस प्रकार था-

मध्यप्रदेश में कोलों की कुल जनसंख्या

1167964

पुरुष	**-**	**595338**
स्त्रियाँ	**-**	**572626**

इसके पश्चात् कोई गणना नहीं हुई, लेकिन जिस प्रकार हर दस वर्ष में लगभग 1 लाख जनसंख्या बढ़ जाती है तो अब वह निश्चय ही 12 लाख से अधिक ही हो गई होगी।

इसी प्रकार एक आँकड़ा शहरी और ग्रामीण क्षेत्र का अलग-अलग भी दिया था, जो इस प्रकार है-

ग्रामीण अंचल में कुल

1030055

पुरुष	**-**	**526981**
स्त्रियाँ	**-**	**504074**

शहरी क्षेत्र में कुल

134659

पुरुष	**-**	**66282**
स्त्रियाँ	**-**	**68377**

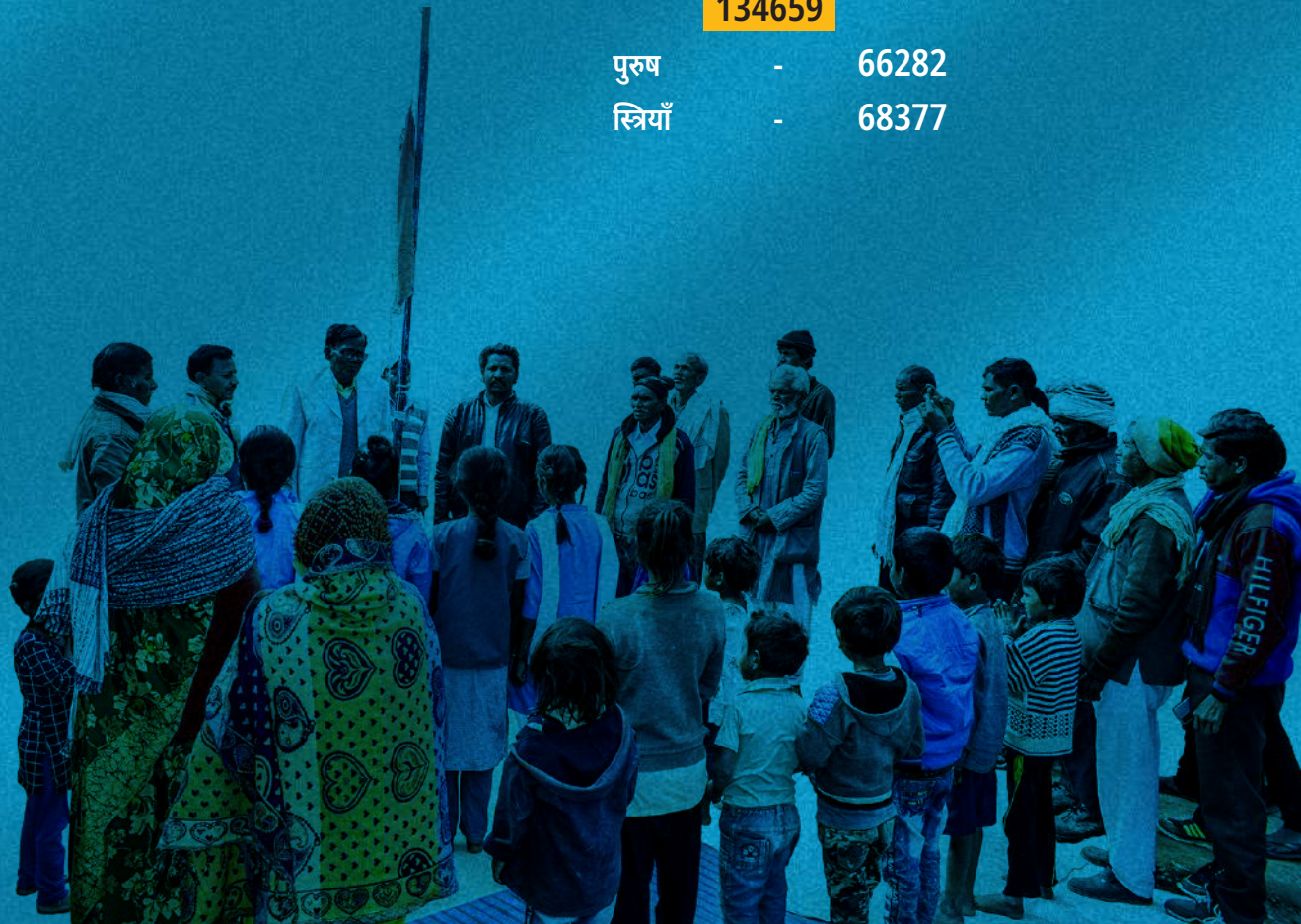

बोली

मध्यप्रदेश में जनजातियों के दो मूल वंश हैं। पहला आस्ट्रिक मुंडा समूह, दूसरा द्रविड़ समूह। विंध्य और महाकौशल के कोल एवं बैतूल के कोरकू इसी आस्ट्रिक मुंडा समूह के माने जाते हैं, जिनकी बोली कभी 'हो' कोलारियन रही होगी, पर अब उसका नाम मुंडारी हो गया है।

भारत में चार भाषा समूह हैं, जिनके अंतर्गत अन्य भाषाएँ हैं -

1. आस्ट्रिक
2. तिब्बती
3. द्रविड़
4. भारोपीय

किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि वर्ष 1854 में मूलर नामक एक विद्वान ने कोल भाषा को मुंडा इसलिए लिख दिया था कि कोल संस्कृत का शूकरार्थी नाम था, जबकि यहाँ के प्राचीनतम निवासी कोल्हान क्षेत्र से आए थे। कोल के अर्थ और नाम से बाद में विकसित भारोपियन भाषा के उस नाम से कोलों का कोई दूर-दूर का भी नाता नहीं था। लेकिन यदि मुंडा पर विचार किया जाय तो उसका अर्थ भी झारखंड में मुखिया या सम्पन्न व्यक्ति ही होता है। ठीक वैसा ही जिस प्रकार यहाँ गौटिया को मुखिया का समानार्थी माना जाता है, इसलिए मुंडा और कोल में अब भी समानता है। कोलों का प्रादुर्भाव (बंगाल, उड़ीसा, झारखंड) के सीमा वाले सिंहभूमि भू-भाग के कोल्हान से माना जाता है जो अब मध्यप्रदेश के तेईंस और उत्तरप्रदेश के नौ जिलों में पाए जाते हैं, किन्तु मध्यप्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, कटनी, जबलपुर आदि सात-आठ जिलों में इनकी संख्या सर्वाधिक है।

आज भले ही इनकी कोई अपनी भाषा न हो, पर उत्तर-मध्य भारत के बहुत बड़े भू-भाग में बसने के कारण प्राचीन समय में इनकी अपनी भाषा रही होगी, जैसे तमाम जातियों के बीच बसकर भी कोरकू अपनी अलग भाषायी पहचान बनाए हुए हैं। उधर झारखंड में भी मुंडाओं की भाषा मुंडारी एवं उड़ीसा में संथाली मौजूद है। उस पर तो झारखंड के रांची विश्वविद्यालय में शोध भी हो रहे हैं, किन्तु मध्यप्रदेश के इन जिलों में जहाँ कोल समुदाय सर्वाधिक संख्या में पाया जाता है, वहाँ वे अपनी भाषा भूल चुके हैं। यहाँ तक कि रिश्ते-नातेदारी में भी वे अन्य समुदायों की तरह ही अपने सम्बन्धियों को भाई, दीदी, दादा, फूफा, भउजी, काकी, बइया, बहनोई, मामा, काका, बाबा, दाई आदि कहकर ही सम्बोधित करते हैं। इसके बावजूद भी अपने ससुर-सासू या बहन के ससुर-सासू को अन्य समुदायों से अलग राउत या रउताइन कहना उनकी कोलारियन भाषा का अवशेष ही लगता है, क्योंकि अन्य समुदाय में राउत या रउताइन जैसे सम्मानजनक नाम नहीं हैं। इसी तरह गौटिया कहलाना भी उसी का परिचायक है।

यह भी देखा जाता है कि कोल अपने समधी से अन्य समुदायों के सम्मान सूचक 'पलागो' के बजाय 'जोहार' या 'जय जोहार' कहकर मिलते हैं जो उनकी पुरानी कोल्हान भाषा का ही अवशेष लगता है, क्योंकि यह अभिवादन यहाँ समस्त कोलों एवं भुमिया, मवासी के साथ ही झारखंड में भी पाया जाता है। पर बाद में उनकी भाषा के बदलाव का कारण शायद यह हो सकता है कि कोल समुदाय ने अधिक जनसंख्या वाले कटनी, सतना, रीवा, सीधी, उमरिया आदि जिलों के घने जंगली क्षेत्र के बजाय उसके किनारे वाले क्षेत्र में अपना रहवास बनाया और लम्बे समय तक जंगल की लकड़ी लाकर किसी गाँव या कस्बे में बेच अथवा किसानों की खेती में सहयोगी की भूमिका से अपनी आजीविका

चलाया। अस्तु तमाम जातियों के नजदीकी सम्पर्क के कारण कोलों ने अन्य समुदायों की भाषा भी अपना ली।

इस तरह इनकी अपनी प्राचीन बोली तो स्पष्ट नहीं है, पर हो सकता है यहाँ के प्राचीनतम रहवासी होने के कारण वर्तमान बुन्देली, बघेली या कटनी में बोली जाने वाली पचेली में ठेठ देशज शब्द इनकी ही बोली के अवशेष के रूप में हों। इसी तरह बांदा की गहोरी के मूल में भी इनकी बोली हो सकती है, क्योंकि विंध्य वैली का विस्तृत भू-भाग ही इनका प्राचीन रहवास रहा है। कुछ लोगों का कथन है कि उनकी बोली के लहजे के संकेत से आज भी इंकार नहीं किया जा सकता, जिसमें बड़े-बूढ़े लोगों द्वारा ओठ में ओठ रखकर धीरे-धीरे ठहरा कर शब्दों का उच्चारण किया जाता है।

उदाहरण के लिए अगर उन्हें यह कहना है कि - **'अरे मैं नहीं जा रहा'**। तो वह मुँह को थोड़ा चौड़ा करके कहेंगे- **'ओ-रे मो-य नो-ही जात लाग ओ-हू?'** जिसका बघेली में अनुवाद होगा कि- 'अरे! मय नहि जात लाग आहू।' इसी तरह ठहरकर शब्दों के लहजे का उच्चारण उनके जातीय गीत दादर में भी मिलता है। अस्तु यह सिद्ध है कि कोल समुदाय की बघेली बोली के अन्दर भी एक प्राचीन बोली के अवशेष अवश्य मौजूद हैं। आज जब बोलियों के आधार पर ही बघेली या बुन्देली से क्षेत्र की अलग-अलग पहचान है तो यही कहा जा सकता है कि अन्य समुदायों के साथ लम्बे समय से रहने के कारण बघेलखण्ड के रीवा, सीधी, शहडोल, उमरिया में उनकी बोली बघेली है और बुन्देलखण्ड से जुड़े कटनी, जबलपुर, पन्ना एवं सतना में बुन्देली या मिश्रित बुन्देली है।

आवास

कोल समुदाय के अधिक जनसंख्या वाले भू-भाग के तमाम जिलों में यही देखा गया कि चाहे कोल हों या उनके समुदाय के उप वर्ग भुमिया-मवासी और बस्ती भी चाहे किसी भी गाँव में हो, किन्तु उनके मकान गाँव से अलग जंगल-पहाड़ से समीपता बनाए हुए एक मुहल्ले के रूप में ही होते हैं। ऐसे मुहल्ले को कोलान, भुमियान या मवासी टोला कहा जाता है। ताकि जंगल से उन्हें वनौषधि, जड़ी-बूटी, कन्द, गोले-बल्ली या सूखी लकड़ी आदि लाने में सुगमता हो।

कोलों, मवासियों या भुमियों के घर प्राय: झोपड़ानुमा 10-12 हाथ लम्बे, 5 हाथ चौड़े एवं 4 हाथ ऊँची दीवार के होते हैं। घर की दीवार मिट्टी की होती है, जिसमें मजबूती के लिए धान-कोदो का पुवाल अथवा पेड़ों के पत्ते मिलाकर बनाए जाते हैं। घर बनाने का समय प्राय: माघ-पूस का महीना अच्छा माना जाता है। दीवाल बनाने से लेकर छप्पर एवं खपरे पकाने तक के सारे काम कोल परिवार खुद कर लेता है। अमूमन स्त्री-पुरुष और छोटे बच्चे ही एक परिवार में होते हैं, अस्तु उस परिवार के एक दो मकान ही होते हैं। किन्तु यदि किसी के तीन-चार लड़के बालिग हुए तो उस घर से अलग वे अपने झोपड़े बनाते जाते हैं, जिसे निनार होना कहा जाता है। कमरों के सामने आँगन होता है जो एक ओर दीवाल एवं तीन ओर बाड़ से घिरा रहता है। कोलों के घर-आँगन साफ-सुथरे लिपे-पुते होते हैं। उस आँगन की बाड़ में बरसात के दिनों में अक्सर लौकी, खीरा, तरोई एवं अन्य दिनों में सेमी या जंगली टमाटर की बेल लगी रहती है जिसमें अगहन से चैत्र माह तक फल आते रहते हैं। आँगन का घेरा यदि बड़ा हुआ तो वहीं बर्तन साफ करने के लिए मजनोरा भी होता है और हाथ मुँह-धोने के लिए एक पत्थर पड़ा रहता है। उस पानी का सदुपयोग हो, इसलिए आस-पास कुछ बैंगन, मिर्च, टमाटर आदि के पौधे भी लगे रहते हैं। यदि आँगन छोटा हुआ, तब मजनोरा या स्नान का स्थान घर के पछीत में होता है।

आँगन छोटा भी हुआ तब भी पीने के पानी की घिनोची दक्षिण की ओर आँगन में ही रखी जाती है जो ढ़ाई फुट ऊँची लकड़ी या पत्थर की गड़ी हुई दो चीप के ऊपर रखी रहती है। वह इसलिए ऊँची बनाई जाती है जिससे छोटे बच्चे या कुत्ते पानी को गंदा न कर सकें और दक्षिण की ओर इसलिए कि सूर्य का झुकाव हमेशा दक्षिण की ओर कुछ अधिक तिरछी गति में रहता है इसके कारण घड़ों पर हर समय छाया बनी रहती है। मई-जून की भीषण गर्मी में घड़े अन्दर कर लिए जाते हैं। यदि घर में मुर्गी पाली गई हों तो उनको रखने के लिए आँगन में ही घर की दीवार

से सटा एक दड़बा भी होता है। वैसे रोज कमाकर खाने वाले कोल समुदाय के लिए मुर्गी पालना हर परिवार के द्वारा सम्भव नहीं होता, यह तभी सम्भव है, जब घर में उनकी देखभाल करने के लिए कोई न कोई बड़े-बूढ़े अवश्य हों।

घर के अन्दर देखा जाय तो कोने में एक देवालय होता है, जिसमें रखे बाना, सांट, कील जड़ी खड़ाऊँ आदि और खूँटी में लटक रही देवी को चढ़ाई गईं करुआ चूड़िया होती हैं। बाहर आँगन के कोने में कई रंगों का देवी का झंडा गड़ा रहता है। घर के दूसरे कोने में रखे फावड़ा, गैंती, कुल्हाड़ी, हँसिया, खुरपी, टोकना आदि खेती या मजदूरी वाले उपकरण भी रहते हैं, साथ ही खूँटी में टँगी ढोलक और अरगसनी में टँगे पुराने कपड़े भी। बासी बची रोटियाँ या भात बिल्ली न चट कर जाय, अस्तु छप्पर से लटक रहा एक सींका रहता है। बस यही एक सामान्य कोल परिवार की गृहस्थी होती है। साठ के दशक तक कोलों के झोपड़े अधिकांश काँस या घास-फूस से छाए जाते थे। अब खपरे से छाए ही मिलते हैं। विवाह के पश्चात् कुछ ही वर्षों में माता-पिता से अलग निनार हो झोपड़ा बनाकर रहने वाला कोल समुदाय अमूमन गाय-भैंस नहीं पालता। यदि घर में खेती है और संयुक्त परिवार हुआ तो मकान के बाहर लकड़ी-लठों से घेरकर बनी एक पशुशाला भी होती है, जिसमें गाय बैल रखे जाते हैं। जंगली जानवरों एवं बकरी चोरों के डर से बकरियों को किसी बन्द कमरे में ही रखा जाता है।

कोल समुदाय यदा-कदा भले ही किसानों के घरों के आसपास बसे मिल जायें, पर वह अमूमन अपनी अलग कोलान बस्ती में बसने में ही आनंद महसूस करता है, ताकि एक-दूसरे के दु:ख-सुख का भागीदार रह सके और गान-गम्मत का आनंद भी मिल सके। 40-50 वर्ष में यह समुदाय अपनी बस्ती बदलता रहता है। प्राचीन समय में यह शायद तमाम प्रकार की बीमारियों के कारण होता रहा होगा, जब गुनिया-पण्डा कह देता कि- 'अब यह खोटाहिल बस्ती रदा नहीं देती' जब कोई नई बस्ती की जमीन चुनी जाती तो चारों ओर एक-एक बित्ते के चार गड्ढ़े खोद उसमें पानी भर दिया जाता है। यदि पानी आधा घण्टे तक न सोखता तो बसने लायक भूमि मानी जाती। अगर वह तुरंत सूख जाता तो अनुपयुक्त, क्योंकि सोखने का सामान्य अर्थ लगाया जाता है कि यहाँ पहले कभी बस्ती बस चुकी है।

खान-पान

कोलों एवं उनके उप वर्गों का खान-पान पहले अत्यंत सरल होता है, जिसमें अनेक तरह से नैसर्गिक ढंग से प्राप्त भाजी, सब्जियाँ, कन्द, जंगली धान, समई शामिल है। कुछ अनाज उन्हें किसानों के खेतों में मजदूरी से भी मिल जाता है। उनकी खेती बहुत कम जोत की होती है, क्योंकि जनजातीय संस्कृति में श्रम तो जीवन पर्यंत है, पर संचय एवं व्यापार कभी नहीं रहा। इसका अपवाद कोल समुदाय भी नहीं है।

कोल परम्परागत रूप से हमेशा से जंगल एवं समस्त प्राकृतिक संसाधन को एक सामूहिक भोजन कोश मानता चला आ रहा है, इसलिए खेत भी उतने ही रखता था, जितना वह खोद-खनकर उसे जोत बना सके, क्योंकि हर प्राकृतिक संसाधन में सामूहिकता वाली उसकी जनजातीय संस्कृति में अनावश्यक संग्रह कभी रहा ही नहीं। अस्तु कोल समुदाय के भोजन में अनेक फलों, सब्जियों, अनाजों तथा कई तरह के जंगली जन्तुओं के माँस की विविधता हुआ करती थी।

उनके द्वारा उपयोग में लाए गए खाद्य वस्तुओं को कई भागों में बाँटा जा सकता है। कोल समुदाय के भोजन में शामिल अनाज अमूमन तीन तरह से उपार्जित होता है।

- घरों के आस-पास कोलिया-बाड़ अथवा पास के खेतों में खरीफ या रवी में उगाए गए अनाज।
- किसानों के यहाँ मजदूरी में प्राप्त अनाज।
- पोखरों डबरों या मैदान में जमी जंगली धान या समई आदि के रूप में एकत्र किए गए अनाज।

खरीफ की फसल

खरीफ की फसल में अपने द्वारा उगाए वह अनाज हैं जिसे कोल समुदाय अपनी छोटी जोत की खेती में खुद जोत बोकर उगा लेता है। ये अनाज- कोदो, कुटकी, सांवा, काकुन, मकाई, धान, मूंग, उड़द और रमतिला आदि हैं।

रवी की फसल

खरीफ की तरह ही रवी में भी खुद के द्वारा उगाए गए वह अनाज हैं, जिन्हें वह अपने कम जोत की खेती में जोत-बोकर उगा लेता है, जो इस प्रकार होते हैं- जौ, चना, अरहर, सरसों आदि।

मजदूरी में प्राप्त अनाज

किसानों के यहाँ मजदूरी में प्राप्त वह अनाज था, जिसे गाँव की किसानी परम्परा में श्रमिक जिस अनाज की कटाई या गहाई करता, वही उसे मजदूरी में मिलता था। अस्तु कोल समुदाय के भोजन में कई अनाजों की विविधता स्वाभाविक रूप से हुआ करती है। यह अनाज इस तरह होते हैं- गेहूँ, चना, मसूर, अलसी, जौ, तिल, सरसो, धान, कोदो, ज्वार और अरहर।

जंगली फल

कोल समुदाय के भोजन में अनेक फल भी शामिल हैं, जैसे- बेर, मकोय, कटाई, जामुन, तेंदू, चार और रज मकोय।

जंगली धान और समई

डबरों-पोखरों या मैदान में जमी जंगली धान (पसही) या समई को भी कोल समुदाय की महिलाएँ भोर में उठकर अपने छिटवा टोकने से धुन लाती थीं। दरअसल बरसात के दिनों में गाँव के आस-पास डबरों-पोखरों में हर वर्ष जंगली धान पसही एवं घास के मैदान में समई नामक घास नैसर्गिक ढंग से जमती है और प्रतिदिन पकती झड़ती रहती है। ऐसे जंगली अनाज को प्रतिदिन सुबह अपने टोकने से झाड़ना पड़ता है। इस धान और समई को यदि प्रतिदिन न निकाला जाए तो वह जमीन पर झड़कर बिखर जाती है। आजकल मात्र दो अनाज गेहूँ और चावल ही मुख्य खाद्यान्न पर गया है, क्योंकि अब कोदो, कुटकी, सांवा, ज्वार, जौ आदि अनाज पूर्णत: खेती से बाहर हैं।

महुआ

महुआ कोल समुदाय का प्रमुख भोजन था, जिसके तरह-तरह के व्यंजन बनते थे। वह अकाल दुर्भिक्ष के समय भी सदियों से उनके जीवन का सहारा बनता आया है। महुए के पेड़ों में वर्षा-अवर्षा सूखे का कभी कोई असर नहीं पड़ता, इसलिए महुआ उनका अकाल दुकाल हर समय का सच्चा साथी था। उनके भोजन में शामिल महुआ के व्यंजन इस प्रकार हैं- लाटा, डोभरी, मौहरी, खुरमा, फरा, रसपुटका, रसखीर, भउरा, काची और डोभरौरा। पर अब महुआ के पेड़ भी कट चुके हैं, अस्तु वह भोजन से अलग होता जा रहा है।

सब्जियाँ, जंगली फल-फूल

कोल समुदाय के भोजन में कई तरह की जंगली भाजियाँ, सब्जियाँ, फल-फूल एवं कन्द होते हैं, जिनमें कुछ जंगलों में नैसर्गिक ढंग से उगे होते हैं तो कुछ आँगन या कोलिया में उगाई गईं तरकारियाँ भी रहती हैं।

नैसर्गिक ढंग से उगने वाली भाजियों में चौलाई, लाल भाजी, कनकउआ, चिरचिरा, सिलवारी, चकोड़ा, बथुई, बरोता, कोइलरी, अमरोला और कचहर (जंगली घुइयाँ) प्रमुख हैं।

कोल समुदाय जंगल में मिलने वाली अनेक तरह की तरकारी खाता था, पर जंगल के निरन्तर सिकुड़ते जाने से इन सब्जियों में भी कमी आई है, जैसे वनकरेली, पडोरा, भेडार, मैनहर, जंगली टमटरी, खोटलइया, नया उगा बाँस, मशरूम (फुट्टू) और जंगली भिंडी।

कुछ तरकारियाँ और फल कोल अपने घर की कोलिया बाड़ एवं आँगन में उगा लेते हैं जो इस तरह होती हैं- तरोई, लौकी, रेरुआ, करेला, सेमी, खीरा, लेदी (फूट ककड़ी), टमाटर, बरबटी, बैंगन, मिर्च, भिंडी, घुइया, धनिया, लहसुन, आलू, अमरूद, मुनगा और अगस्त।

जंगली कन्द

कोल समुदाय के भोजन में कुछ जंगली कन्द भी शामिल थे, पर वर्तमान में काफी कमी आ गई है। जैसे- बराही कन्द, खनुआ कन्द, पीड़ी कन्द, हँसिया ढापिन और बिरई कन्द।

आहार

प्राचीन समय से ही कोल समुदाय में मांसाहार उनके भोजन का प्रमुख हिस्सा है। पहले जंगल के समीप बसने के कारण सुअर, साम्भर, चीतल, हिरण, सेही, खरगोश, मोर, कछुआ, केकड़ा, मछली आदि कई तरह के जीव-जंतुओं का मांस उनके भोजन में शामिल था। देवी-देवताओं के पुजाई में भी बकरा, घेटुला, मुर्गा का मांस सहज ही मिलता रहता था। किन्तु जंगल में शिकार खेलने में प्रतिबंध और देवी-देवताओं के पूजा पद्धति में आये बदलाव के कारण अब केवल खरीदकर मिलने वाला मांस, मुर्गा, मछली का शिकार ही उनके खान-पान में शेष है।

पहले नदी-नाले तालाब आदि में सहज ही मछलियाँ मिल जाती थी; क्योंकि आषाढ़ से क्वार तक भरे हुए बाँध कार्तिक में रबी की जुताई-बुवाई हेतु जब फोड़े जाते हैं तो कोल समुदाय के बालक वृद्ध सभी उन बाँधों में मछली मारने निकल पड़ते हैं और मछली लाने एवं खाने का यह क्रम महीनों चलता रहता है, किन्तु जबसे फसलों में नीदा नाशक, कीट नाशक डालने का प्रचलन बढ़ा तो उस जहरीली खेती का असर नदियों की मछलियाँ पर भी पड़ा और वह समाप्त-सी हो गई हैं। अस्तु जो मछली पहले बरसात में उल्टी दिशा में चलकर नदियों से नाले और नालों से पहाड़ तक चढ़कर फिर खेतों के स्थिर पानी में आकर करोड़ों की संख्या में अंडे बच्चे देती थी, वह पूरी तरह समाप्त हो गई हैं। कोल के भोजन में सहजता से शामिल मछली का शिकार अब पूरी तरह समाप्त है, जिससे भोजन के दो अनाजों में सिमटकर रह जाने का दुष्परिणाम भी बच्चों और गर्भवती महिलाओं में कुपोषण के रूप में दिखने लगा है।

रहन-सहन एवं संस्कार

यदि कोल समुदाय के उप वर्ग घने वनों में रहने वाले भुमिया को छोड़ दिया जाय तो जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि कोल समुदाय अपना निवास स्थल जंगल-पहाड़ के अंतिम छोर में चुनता है। अपने लिए वह ऐसा स्थान उपयुक्त मानता है जहाँ से जंगल समाप्त हो और मैदानी भाग शुरू हो, क्योंकि उसकी आजीविका दोनों से जुड़ी हुई होती है।

कोल समुदाय के लोगों का जीवन अत्यंत सहज, सरल एवं छल-छद्म रहित होता है। घुटने तक धोती-पंचा, पैर में चप्पल या बिना जूता-चप्पल, कमर के ऊपर बंडी और सिर में पगड़ी यही उसका पुराना पहनावा था, पर अब कस्बाई क्षेत्र से गाँव तक नई पीढ़ी का पहनावा पैंट-शर्ट एवं जूतों ने ले लिया है। इसी तरह महिलाएँ धोती-बंडी एवं गहने के रूप में पुरानी पीढ़ी सुतिया, हेवाल, छन्नी बनबरिया या कोई-कोई बहुंटा आदि पहनती हैं, पर नई पीढ़ी कमर का डोरा, पायल और मंगल सूत्र ही पहनती हैं। आधुनिक शिक्षा और व्यावसायिक कारणों से इनके रहन-सहन, पहनावे में बदलाव आया है।

कोलों का निवास भी अत्यन्त सरल होता है। रहने के लिए एक या दो कमरे का मकान, सामने आँगन एवं पिछवाड़े एक छोटी-सी कोलिया बस यही एक सामान्य कोल परिवार का आवास स्थल होता है।

कोल समुदाय में भी पुरुष प्रधान समाज की प्रधानता है, पर इसके बावजूद भी स्त्री-पुरुष में समानता एवं मातृ सत्तात्मक समाज के गुण भी पाए जाते हैं। पति-पत्नी साथ-साथ काम करते हैं। इसी के चलते न तो उनमें बालक-बालिका में अधिक भेद होता हैं, न बालिका माता-पिता के लिए बोझ समझी जाती है। जैसे ही 13-14 वर्ष के बालक या बालिकाएँ हुई, सभी मेहनत-मजदूरी के काम में लग जाते हैं और कुछ वर्ष में विवाह हुआ तो माता-पिता से अलग (किन्तु समीप ही) झोपड़ा बना उसमें रहने लगता है। संयुक्त परिवार वहीं दिखता है, जहाँ खेती-किसानी है। इस तरह माता-पता से अलग झोपड़ा बनाकर रहने को निनार होना कहा जाता है। यह नव-दम्पति अपना झोपड़ा और उसकी दीवार आदि खुद बना लेता है।

स्त्री-जीवन

कोल समुदाय की महिलाएँ मजबूत कद काठी की होती हैं जो पति के साथ-साथ ही काम करती हैं, इसलिए घर-गृहस्थी में उनका दर्जा बराबरी का माना जाता है। वह हर क्षेत्र में अपनी भागीदारी बखूबी निभाती हैं। पुरुषों वाले कुछ काम जैसे हल चलाना, घर के छप्पर की छवाई जो परम्परा के अनुसार महिलाओं को वर्जित है, यदि ऐसे कामों को छोड़ दिया जाय तो बाकी काम में उनकी पूरी भागीदारी रहती है। वे खेत की बुवाई, निदाई, कटाई, गहाई एवं देखभाल आदि समस्त काम तो करती ही हैं, पर बाद में बच्चों की देखभाल, घर की साफ-सफाई से लेकर भोजन बनाना व अन्य काम भी उन्हीं के जिम्मे रहता है।

वनोपज संग्रहण एवं मजदूरी आदि में भी कोल महिलाएँ पुरुषों के साथ-साथ रहती हैं। विवाह आदि अवसरों पर वे अपनी हर जिम्मेदारी में कभी पीछे नहीं रहतीं। हालाँकि अन्य समुदाय की समीपता से दूसरे जनजातियों के मुकाबले कोलों के रहन-सहन एवं संस्कृति का बहुत कुछ आदान-प्रदान भी हुआ है लेकिन उसके बावजूद भी कोलान में अपनी अलग पहचान एवं परम्पराएँ अभी भी मौजूद हैं।

प्राचीन समय में तो पुरोहित की भी कहीं आवश्यकता नहीं पड़ती थी, सारा कार्य वह खुद पारंपरिक ढंग से कर लेते थे और नाई की भूमिका का निर्वहन सुआसा (लड़की या लड़के का फूफा) करता था, पर अब उनमें भी नए जमाने का बदलाव स्पष्ट दिख रहा है। नए जमाने के प्रभाव से अब विवाह सनातन रीति-रिवाज के अनुसार अपने कुल आचार्य के मुहूर्त एवं लग्न पत्री के आधार पर ही होता है।

इनमें कुछ पुरानी परम्पराएँ अभी भी मौजूद हैं। विवाह में कन्या पक्ष के ऊपर एक तरफा बोझ न पड़े, अस्तु कोल समुदाय में पहले 10 कुरई, कोदई (40 किलो कोदो का चावल) देने की पुरानी परम्परा थी, जिसे 'चारी' कहा जाता था। यद्यपि कन्या पक्ष इसकी माँग नहीं करता था, किन्तु वर पक्ष स्वत: बारात के साथ लाता और भेंट करता। इसी तरह कन्या पक्ष की माँ, दादी माँ एवं बुआ के लिए वर पक्ष तीन साड़िया लाता था और सुआसा के लिए एक परदनी भी, लेकिन अब पढ़े-लिखे समाज में धीरे-धीरे यह परम्परा भी समाप्त होनी शुरू हो गई है।

मद्यपान

प्राचीन समय से शराब कोल समुदाय की एक अनिवार्य पेय वस्तु थी, जिसे वे खुद ही महुएँ से बना लेते थे, किन्तु उस समय जब हैजा, निमोनिया आदि की अन्य कोई कारगर दवा नहीं थी, तब वह बीमारियों से बचाव में एक महत्त्वपूर्ण औषधि का काम करती थी, शायद इसीलिए समाज में वह देवी के रूप में मान्य थी, जिसे आज भी 'मदाइन गंगा' कहा जाता है। इसका बकायदे एक आख्यान है जिसमें अर्जुन के स्वर्ग लोक से उसे लाने का वर्णन है।

किन्तु विवाह के समय मण्डप पड़ने से लेकर बारात लौटकर घर आने की अवधि तक उसका सेवन उस घर में पूरी तरह प्रतिबन्धित होता है। इसका पीछे वैज्ञानिक तर्क शायद यह रहा होगा कि 'उस समय अगर विवाह का आयोजक परिवार ही शराब पियेगा तो विवाह का कार्य सुचारू रूप से संचालित नहीं होगा।' अस्तु उसे प्रतीक के रूप में एक चुकड़ी में डाल मंडप में बाँधकर झुला दिया जाता है। यह कहते हुए कि 'हे देवी! तुम अब दस दिन इसी पवित्र स्थान पर बनी रहना। बाद में बारात आने और परछन-खिचड़ी आदि हो जाने पर उस मदाइन वाली चुकड़ी को मण्डप से छोड़ दिया जाता है और फिर तो पूर्ववत् शराब पीने का दौर ही शुरू हो जाता है।

सीधी जिले के रामपुर गाँव में तो हमें समाली कोल ने मदाइन गंगा के स्वर्ग से लाने का एक आख्यान सुनाया था, जो इस प्रकार है-

बोले राजा बड़खरे, सुना तु बरम्हा बात।
धरती माँ कन्या बढ़ी, मोहि आबय नींद न रात॥
को उपजा दसमास क बेटबा, धरिस धरनियन पाउ।
जउन लयाबय देव मदाइन, रचउ कुमारिन ब्याहु॥
अर्जुन उपजा दशमास क बेटबा, धरिस धरनियन पाउ।
उहइ लयाबय देव मदाइन, रचा कुमारिन ब्याहु॥
जा भिम्मा के धामन धउआ, जा अर्जुन के बान।
होत भोर भिनसारे, पहुच इन्द्र के द्वार॥
केखर आह्या धामन धउआ, केखर आह्या बान।
कउन जरब या परिगय तोहई, हमी जगाया रात॥
भिम्मा के हम धामन धउआ, अउ अर्जुन के बान।
हमही दइदेय देव मदाइन, रची कुमारिन ब्याहु॥
तुही मदाइन देव न धउऔ, तुम बीच गलिन पी जा।
जाय पठाबा अर्जुन भिम्मा, लइ जाय बांह चढ़ाय॥
काहे लउटे धामन धउआ, काहे लउटे बान।
का कहिन उय राजा इंदर, कइसन बोलिन बान॥
हमी त जइसय पनहीं मारिन, तोहई भरिन तुकार।
देव मदाइन दिहिन न हमका, तोहरय करिन बोलाव॥
भिम्मा पलानय हाथी, अर्जुन पलानय घोड़।
होत भोर भिन्सारे, ठाढ़ इंद्र के द्वार॥
पामर केर पहरुआ, पवन पतंगा धाय।
इन्द्रन खबर सुनाबा, दुइ मन्नुख ठाढ़ दुआर॥

कउन बरन हैं मन्नुख दोऊ, का हमय असबार।
का मांग उय माँगय, तुमसे हैं काहे मा ठाढ़॥
गउर बरन दोऊ मन्नुख, हाथी घोड़ असबार।
राजा इन्द्र उय रटत लाग हैं, अउर न बोलय बान॥
शेषनाग कय गोंनरी, दिहा बइठका जाय।
अर्जुन होइ त बइठी, दूसर भगी पराय॥
बइठय का उठकइयाँ अर्जुन, बइठे पालथी मार।
होय चढाचढ़ असुरी पसुरी, छाड़िस नाग चिहाड़॥
ठाढ़ नगिनिया बिनती करय, दशव अगरिया जोर।
तीन लोक के ठाकुर, तुम रखा मोर अहिबात॥
ना मन शंका किह्या नागिन, न जिउ रख्या खभार।
हमका दइदे देव मदाइन, छड़बय नाग तोहार॥
समुद दीप मा दुबिया, ओही कय लह लह पात।
ओहिन मा है देव मदाइन, लइ आबा बांह चढ़ाय॥
रेग चले हैं अर्जुन, चलत न लागय वार।
चला चला तुम देव मदाइन, बहुतय चाह तोहार॥
तोरे देश ना जाब रे अर्जुन, हुआ धरम नहि आय।
सास लिपय बहू कचरय, धरम कहा से होय॥
चला चला तुम देव मदाइन, रखबय मान बिचार।
लीप पोत के अगना धरबय, पूजा करब तोहार॥
हुअन से चली मदाइन, भय महुआ तर ठाढ़।
कोऊ ओड़ाबय गघरा गघरी, कोऊ अड़ाबय नाद॥

आजीविका

मैदानी भाग में बसने वाला कोल समुदाय अमूमन किसानों के यहाँ हरवाही या मजदूरी करता है। महिलाएँ भी साथ-साथ ही काम करती हैं, इसीलिए कोलों का कद गठीला और मजबूत होता है। अब खेती की पद्धति बदल जाने के कारण वह शहरों में मजदूरी, रिक्शा चलाना या फिर अन्य प्रांतों में जाकर काम करने लगे हैं, किन्तु पहाड़ों-जंगलों के आस-पास रहने वाले कोल समुदाय की समस्त आजीविका आज भी वनोपज और विशेषकर लकड़ी से ही जुड़ी है। वह अनाज के बदले गाँव में बेर, मकोय, आँवला, तेंदू, चार, चिरोंजी आदि तमाम तरह के फल देते हैं और पास के शहरों में उसे बेचते भी हैं। ये इसका उपयोग आजीविका के लिए ही करते हैं, व्यापार के लिए नहीं, क्योंकि अंतत: उसका उपभोक्ता तो अन्य समुदाय होता है। बाकी कोल समुदाय के लिए जंगल का उपयोग सार्वजनिक भोजन कोश के रूप में ही है, व्यापार के लिए नहीं।

संचय और व्यापार जनजातीय संस्कृति में कहीं है ही नहीं, इसीलिए कोल समुदाय प्रकृति से जितना लेता है, उतना वापस भी करता है। अस्तु कोल संस्कृति प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करने के कारण प्रकृति संरक्षक ही है।

पलायन वृत्ति

आज खेती की शैली बदल जाने और अपनी सीमित खेती के कारण कोल समुदाय के सामने आजीविका का सबसे बड़ा संकट है, इसलिए अक्सर अगहन से जेठ माह तक के लिए उनका मालवा, गुजरात या पंजाब, हरियाणा आदि स्थानों के लिए पलायन भी होता है। चैत्र में भी अपनी खेती काट मींज मालवा, नर्मदानगर आदि स्थानों में जाते हैं पर अकेले नहीं, यह समुदाय परिवार या समूह के साथ जाता है और तब घर की देख-भाल की जिम्मेदारी बड़े-बूढ़ों के ऊपर ही रह जाती है। फसलों की कटाई तो आज भी समूह में करने ही जाते हैं लेकिन अब कुछ नवयुवक अकेले भी अनेक प्रांतों में जाकर नौकरी करने लगे हैं।

गीत-संगीत

जिस प्रकार मेहनत मजदूरी उनकी नियति है, उसी प्रकार गीत-संगीत भी उनके जीवन का अंग और मनोरंजन का साधन है। जैसी उनकी रोजमर्रा की जिंदगी है, उसी को रेखांकित करते हुए गीत भी होते हैं जो उनकी जीवन की स्थिति और उनकी जीवटता को ठीक उसी प्रकार चित्रित करते हैं, जैसे- विन्ध्य बैली या भीम बैठका के शैलचित्र। दिनभर की कड़ी मेहनत और रात्रि में देर रात्रि तक गान गम्मत की संगत। ढोलक तो उनकी जीवन संगिनी की तरह होती है जो पलायन में भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। फिर जैसी स्थिति, वैसे ही त्वरित गीत रचना तथा पलायन में भी यथा स्थिति का वर्णन। वैसे उनकी कोल्हाई दादर सुनने के तो अनेक अवसर मिले, पर जब मैं लोकगीतों पर काम करता था तो कटनी मैहर के आस-पास से आये एक कोलों के समूह के गाये सम सामयिक आशु गीत दादर मुझे अभी भी नहीं भूले -

आसव के सम्मत म बरखा न पानी।
दइउ जानय कइसन के कटी जिनगानी॥

(इस वर्ष ठीक से बारिश नहीं हुई, अस्तु ईश्वर ही मालिक है कि हमारी जिन्दगी कैसे कटेगी?)

पर आशु गीत का जवाब भी आशु गीत में ही कि -

बरखा न पानी झुराय गईं धानय।
चला चली गउटिन अब कोइलिया खदानय।

(बारिश न होने के कारण खेत में बोई गई धान सूख गई। इसलिए गउटिन अब कोइलिया (सीमेंट फैक्ट्री के पत्थर) खदान में काम करने के लिए तैयार हो जाओ।)

लेकिन जून में जैसे ही मानसून की पहली बारिस हुई, वह परदेश से अपनी आस्थायी झोपड़ी समेट घर के लिए रवाना हो गए। क्योंकि तब उन्हें अपने माता-पिता और खेती-बाड़ी की याद बिसूरने लगी थी, जो उनके खेरकुची दादर गीत के जवाब-सवाल में आये बिना नहीं रही थी कि -

गिरगा है दउंगरा बहाए बूड़ा कछरा।
चल गउटिन लउटि चली अब अपने देसरा॥

(मानसून की पहली बारिश होने से नदी मैदान हर जगह पानी ही पानी दिख रहा है। अस्तु अब तो गौटिन अपने गाँव-देश चलने की तैयारी करो।)

पर गौटिन का जबाब भी कितना सटीक था कि-

होत भुनसार चले जाब अपने गउना।
थोका अउर नाच लेई हाय रे कोलउना॥

(भोर होते ही इस जगह को छोड़ हम लोग अपने गाँव और देश की ओर चल पड़ेंगे। पर अभी कुछ समय तक और गान गम्मत कर लो?)

कोल समुदाय के रहन-सहन एवं क्रिया-कलापों के साथ एक और गीत गाया जाता है, वह है टिप्पा गीत। यह इनका जातीय गीत नहीं, बल्कि श्रम गीत है जो श्रम की दुरूहता को हल्का करने के लिए अक्सर गाया जाता है।

इसे वे धान का रोपा लगाते समय या कोई काम करते समय जवाब-सवाल के रूप में गाते हैं। इन गीतों को यदि दुनिया के श्रेष्ठतम प्रेम गीतों के श्रेणी में भी रखा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। दो पँक्तियों के अनुशासन में बँधा हुआ यह गीत भले ही श्रम की दुरूहता को हल्का करने के लिए गाया जाता है, पर युवा मन की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति होता है।

यह चाहे उनके गाँव छोड़कर पलायन का समय हो या गाँव में ही काम करते समय का, पर इसमें सब कुछ समाहित रहता है। यथा -

तलबा के खाले मची गइरी।
जहां रोपा लगामय कनक मउरी॥

(तलवा (पैर का निचला हिस्सा) के नीचे जुताई करके पानी को मचा दिया गया है, जहाँ कनक जीर और छिनमौरी नामक धान का रोपा लगेगा।)

कभी-कभी तो यह गीत जवाब सवाल में गाते-गाते प्रेम विवाह का माध्यम भी बन जाता है। गीत देखें -

कहना से आए कहा जइहे।
मोसे राम राम कइले चले जइहे॥

(तू कहाँ से आया है और कहाँ जायेगा? जाने के पहले मुझसे राम-राम तो कर ले, फिर चले जाना।)

मूड़े गठरिया हाथे म झोरा।
कहां जाती रजनिया चुनू क बेरा॥

(तेरे सिर पर गठरी और हाथ में झोला है। सूर्य डूबने वाला है, ऐसे में तुम कहाँ जा रही हो?)

कच्चा करउंदा करू लागय।
मोर लइले गठरिया गरु लागय॥

(यह रास्ते में दिख रहा कच्चा करौंदा खाने में कड़वा लगता है। मेरे सिर की गठरी तू ले ले, वह अधिक वजनदार है।)

आसव के धान म चाउर नहि आय।
हम तो कहां कहां बागब ठउर नहि आय॥

(इस वर्ष के सूखे के कारण धान में चावल ही नहीं है। हमें काम के तलाश में कहाँ-कहाँ घूमना पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता!)

बरखा न पानी झुखाय गई धान।
चला उड़ चली चिरई कोइलिया खदान॥

(पानी नहीं गिरने से धान तो सूख गई, अस्तु कैमोर पहाड़ के कोइलिया खदान चला जाय।)

गोहूँ कय रोटी ऊपर चटनी।
छैला तोही घुमइहउं शहर कटनी॥

(गेहूँ की रोटी में चटनी रखकर खा लें। मैं तुझे कटनी शहर के चूना-भट्टा में काम करने ले चलूँगी।)

गोहूँ कय रोटी गोजहरा कय।
मन लइगय बिटीबा उचहरा कय॥

(मेरे लिए गेहूँ की रोटी भी जौ चने जैसी ही रूखी सूखी है, क्योंकि मेरे मन को तो उँचेहरा की लड़की ने अपने पास रख लिया है।)

लम्मी सड़किया म गोला बाजार।
पिया लइदे मुंदरिया छिंगुरिया के तार॥

(कटनी की इस लम्बी सड़क में गोला बाजार है, जहाँ सभी वस्तुएँ बिक रही हैं, अस्तु मेरी छोटी उँगली के बराबर की मुझे एक अँगूठी खरीद दो।)

गयउ तय बजरिया लयायव हरदी।
नए घइला क पानी करय सरदी॥

(मैं बाजार जाकर वहाँ से हल्दी खरीद लाया हूँ, क्योंकि नए घड़े का पानी पीने से सर्दी जुकाम हो जाता है।)

गाड़ी तो आवय गोलाई दइके।
मोही छैला बोलाबय मिठाई लइके॥

(कटनी में गाड़ी गोल-गोल आकृति बनाकर आती है और यह छैला मुझे मिठाई दिखाकर बुला रहा है।)

फोर फोर पथरा लगयव चट्टा।
चोरी चोरी भेजाय दे बीड़ी क कट्टा॥

(मैं पत्थरों को तोड़कर चट्टे लगा रहा हूँ। तू चुपचाप मेरे लिए एक कट्टा बीड़ी ले आ।)

छूला के पत्ता झिझिरिया देखाय।
छैला काहे दुहराने पसुरिया देखाय॥

(पलाश के पत्ते को कीड़े के खा लेने से उनमें छेद दिख रहे हैं। तू इतना दुबला क्यों है कि तेरी पसली की हड्डी दिख रही है?)

आमा लगायव आमिल पुर मा।
तोसे सादी करहउं जबलपुर मा॥

(मैंने आम का पेड़ तो अमिलपुर में लगाया था। अब तुझसे जबलपुर में ले जाकर विवाह रचाऊँगा।)

अमली के पेड़े पटक तरुआ।
तोही अइसय बदा है जलम रडुआ॥

(तू तो इमली के पेड़ में अपना सिर पटक ले, क्योंकि तेरे भाग्य में जिंदगी भर कुँवारा रहना ही लिखा है।)

तोर मोर यारी दइउ जानय।
जइसय गंगा म जमुना हिलोर मारय॥

(तुम्हारी और मेरी दोस्ती ईश्वर ही जानता है जो गंगा और यमुना के संगम के जल की तरह हिलोर लेने जैसी है।)

खाते सेमइयाँ बतउते भाजी।
तोरे जियरा म छैला दगाबाजी॥

(तू खा तो सेमई की खीर रहा है, पर मुझसे भाजी खाने की बात बता रहा है। यानी तेरे मन में दगाबाजी भरी हुई है!)

खोदी खदनिया म चारा नहि आय।
बिना लबरी बताने गुजारा नहि आय॥

(खोदी हुई गढ़ई में घास नहीं होती और बगैर झूठ बोलने से गुजारा ही नहीं चलता।)

साईकिल से जाना सइकिल से आना।
दगाबाजी न किन्हें गली म थाना॥

(तू साईकिल से आता जाता है और कभी-कभी मुझे भी बिठा लेता है, पर हाँ! किसी प्रकार की दगाबाजी मत करना? क्योंकि पुलिस थाना मेरी गली में ही है।)

सम्पत भोगेव बिपत भोगिहउं।
तोरे जियरा के लाने जहल भोगिहउं॥

(मैंने धन-सम्पति का सुख भोगा है, पर अब विपत्ति आई तो उसे भी भोगूँगा और जरूरत पड़ी तो तेरे लिए जेल भी जाने के लिए तैयार हूँ।)

इस तरह यह आशु गीत टिप्पा काम की दुरूहता को सरस बनाते हुए जवाब-सवाल के रूप में घण्टों चलते रहते हैं।

घर-गृहस्थी और खेती-बाड़ी के सामान

खेती के उपकरण

कोल समुदाय की साधारण खेती होती है, अस्तु उसके बहुत सारे उपकरण वह खुद ही बना लेता है। यदि कुछ लोह उपकरण गैंती, कुदारी, फावड़ा, कुल्हाड़ी आदि खरीदते भी हैं तो उनके बेंट और हल जुए आदि उन्हीं के बनाए हुए होते हैं। क्योंकि लड़कपन से ही लकड़ी के काम से जुड़े होने के कारण कोल समुदाय उसमें पारंगत होता है। इसी तरह घर में उपयोग हेतु खटिया, मचिया, खटोलबा, नारा, गेरमा, रस्सी आदि वह खुद बना लेता है। महिलाएँ खटिया-मचिया के शूमा बरने से लेकर कच्ची मिट्टी के बर्तन कुठली, गोरसी, चूल्हा, चकरा आदि आवश्यकता अनुसार वहीं बना लेती है। यदि घर में साधारण खेती भी होती हो तो एक सामान्य कोल की गृहस्थी में यह वस्तुएँ अवश्य हुआ करती हैं। यदि गृहस्थी कम हुई तो वस्तुएँ भी घट जाती हैं।

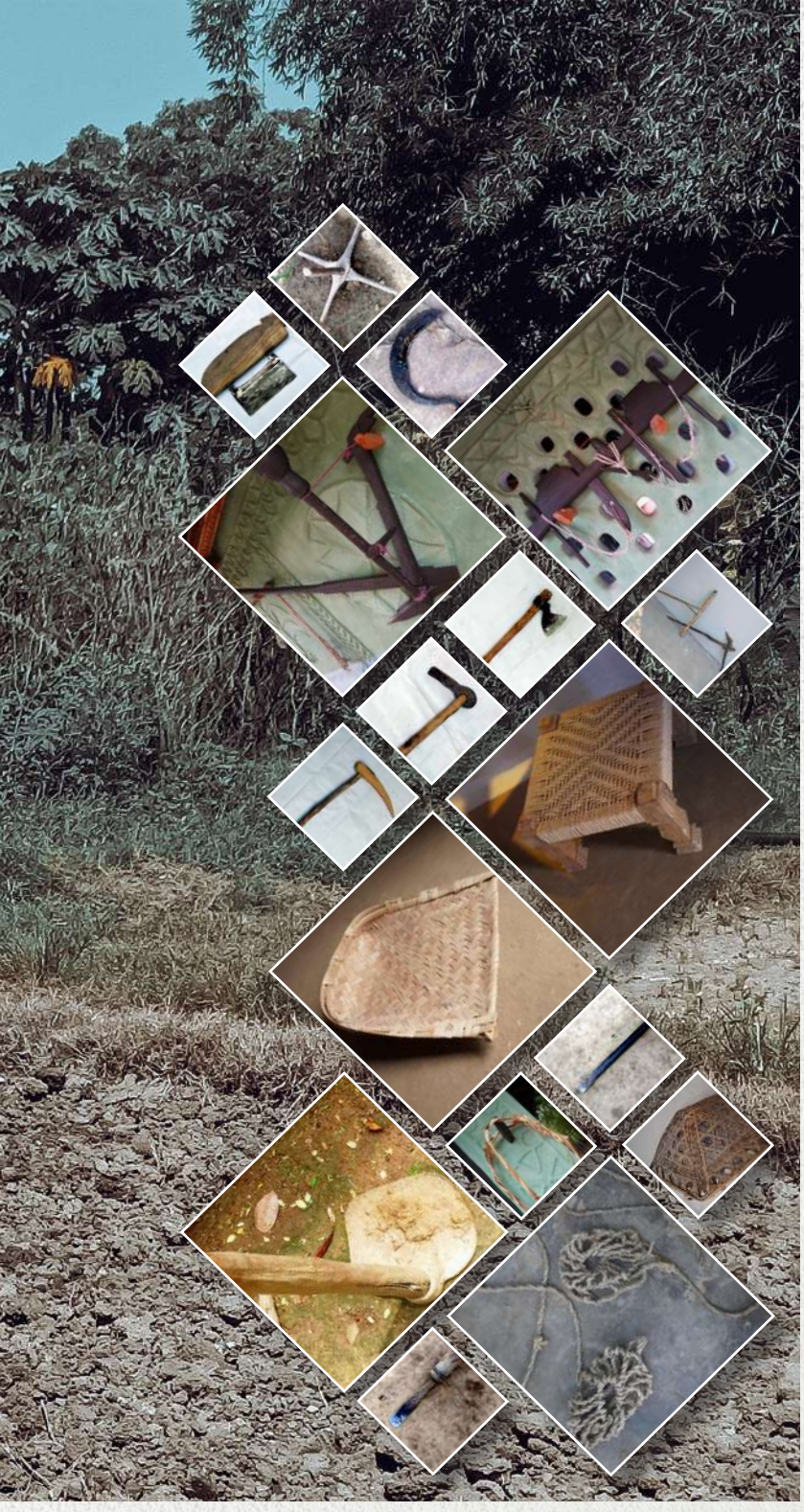

हल	:	इससे खेत की जुताई होती है।
जुआ	:	इसमें नधकर बैल जोते जाते हैं।
माचेड़ी	:	इसमें नए बैल दमे जाते हैं।
नाड़ी	:	इससे खेत की बुवाई की जाती है।
हंसिया	:	इससे फसल की कटाई की जाती है।
खुरपी	:	इससे खेत की निराई होती है।
खुरपा	:	इससे घास छीली जाती है।
फरुहा	:	इससे मिट्टी खोदकर टोकने में भरी जाती है।
गैंती	:	इससे मिट्टी खोदी जाती है।
डेगर	:	इसे नध कर खेत में मिट्टी का ढेला फोड़ा जाता है।
बसूला	:	इससे लकड़ी छीली जाती है।
रोखना	:	इससे लकड़ी में छेद किया जाता है।
सबरी	:	इससे धरती में दर बनाया जाता है।
कुदारी	:	इससे मिट्टी खोदी जाती है।
पाँचा	:	इससे भूसा चढ़ाया जाता है।
झउआ	:	इसमें भरकर सामान इधर-उधर ले जाया जाता है।
ढोलिया	:	इसमें बीज भरकर और कंधे पर टाँगकर खेत में बुवाई की जाती है।
कुल्हाड़ी	:	इससे लकड़ी काटी जाती है।
सूपा	:	इससे अनाज साफ किया जाता है।
ओइरा	:	इसे नाड़ी में लगा बीज की बुआई की जाती है।
रस्सी	:	इससे कुएँ से पानी भरा जाता है।

रसोई एवं गृहस्थी का सामान

तबला	:	इसमें दाल-चावल पकाया जाता है।
बटुइया	:	चावल और दाल पकाई जाती है।
करछुली	:	इससे चावल-दाल आदि निकाला जाता है।
तबेलिया	:	इसमें दाल पकाई जाती है।
गंजा	:	इसमें सब्जी और मांस रांधा जाता है।
लोटिया (लोटा)	:	इसमें पानी पिया जाता है।
खोरिया (कटोरी)	:	इसमें बच्चों को खाने के लिए खाना दिया जाता है।
चिमटा	:	यह रोटी सेंकने में उपयोगी होता है।
टठिया (थाली)	:	इसमें भोजन को परोस कर खाया जाता है।
गिलास	:	इससे पानी पीते हैं।
कोपरी	:	इसमें रखकर आटा गूंथा जाता है।
खोरबा	:	सब्जी, दाल, दूध आदि रखकर दिया जाता है।
मथानी	:	इससे दही बिलोया जाता है।
करहिया	:	पूड़ी आदि सिराई जाती है।
बाल्टी	:	पानी भरा जाता है।
पइना	:	चावल को पकाने के पहले इसमें भरकर बटलोही में चढ़ाया जाता है।
झझरिया	:	यह कड़ाही से पूड़ी निकालने में सहायक होती है।
तबा	:	इसमें रोटी सेंकी जाती है।
मूसल	:	इससे चावल और धान कूटे जाते हैं।

पत्थर के बर्तन और उपकरण

लोढ़बा

इस पर मिर्च-मसाले एवं चटनी पीसी जाती है।

लोढ़िया

जड़ी-बूटी आदि के पीसने में सहायक होती है।

सिलौटी

इससे नमक-हल्दी आदि रखकर लोढ़े से पीसा जाता है।

चौकी

इसमें आटा की लोई को रख और बेलना से बेलकर रोटी बनाई जाती है।

कुड़िया

इसमें आम-इमली के पना, बगजा एवं टहुआ आदि को रखकर खाया जाता है।

कूड़ा

इसमें खट्टी कढ़ी, बगजा आदि रखे जाते हैं।

काड़ी

इसमें भरकर मूसल से धान-चावल आदि कूटे जाते हैं।

पथरी

इसमें आटा माड़ा जाता है।

चकिया

इससे अनाज पीसा जाता है।

जेतबा

इससे दलिया और आटा पीसा जाता है।

घिनोची

इस पर पानी भरे हुए घड़े रखे जाते हैं।

मिट्टी के कच्चे बर्तन एवं उपकरण

पेउलिया

इसमें धान, कोदो, गेहूँ आदि रखे जाते हैं।

गोरसी

आग न बुझे अस्तु इसमें राख के साथ अधजले कंडे को दबाकर रखा जाता है।

सइरी

ठंड के दिनों में इससे आग तापी जाती है।

कुठली

इसमें अनाज व अनाजों का बीज रखा जाता है।

चुल्हबा

इस पर भोजन पकाया जाता है।

कोनइता (चकरा)

इसमें धान कोदो दले जाते हैं।

मिट्टी के बर्तन

घघरी (घड़ा)	:	इसमें पानी भरकर रखा जाता है।
डबुला	:	यह खाद्य तेल रखने के काम आता है।
तरछी	:	मथानी के साथ दही बिलोने के काम आती है।
घइला	:	छोटे आकार का घड़ा जिसमें पीने का पानी भरकर रखा जाता है।
दोहनी	:	इसमें मठ्ठा रखा जाता है।
मरकी	:	यह भंडार घर में अनाज रखने के काम आती है।
नाद	:	यह पशुओं के पानी पिलाने के काम आती है।
दपकी	:	इसमें पानी भरकर कंधे पर टांग जंगल में लकड़ी काटने या वनोपज संग्रहण के समय ले जाया जाता है।
ठेकइया	:	इसमें दूध गर्म किया जाता है।
डहरी	:	यह भंडार घर में चावल भरकर रखने के काम आती है।
डब्बी	:	इसमें मिट्टी का तेल भरकर रात्रि में प्रकाश हेतु जलाया जाता है।

सुतली की वस्तुएँ

नारा : हल चलाने के लिए बैलों को बांधकर ले जाने आदि के काम आता है।

गेरमा : पशुओं को खूंटे में बाँधने के काम आता है।

सिगौटी : यह सुन्दरता के लिए बैलों के सींग में बाँधी जाती है।

गड़ाइन : इसमें एक साथ तीन-चार बैलों को नधकर धान गेहूँ की गहाई की जाती है।

मुस्का : यह गहाई के समय बैलों के मुँह बाँधने के काम आता है, जिससे वे अनाज के दाने न खा सकें।

गोफनी : यह खेत में चिड़िया आदि को उड़ाने के काम आती है।

खरिया : इसमें बाँधकर अनाज की लांक एवं भूसा लाया जाता है।

अन्य वस्तुएँ

मचिया	:	धान की दराई करते समय बैठने के लिए।
खधरी	:	तीतर-बटेर पालने के लिए।
बागुड़	:	खरगोश पकड़ने के लिए।
लौकी	:	वनोपज संग्रहण के समय पीने का पानी ले जाने के लिए।
खटोलबा	:	छोटे बच्चों को लिटाने के लिए।
सिकहर	:	भोजन को बिल्ली आदि से बचाने के लिए उपयोगी।
धधारी	:	लावा तीतर को फँसाकर पकड़ने के लिए।
खटिया	:	सोने के लिए।
ढोलक	:	गाने-बजाने के लिए।
छापा	:	मछली पकड़ने के लिए।
वंशी	:	मछली को फँसाने के लिए।

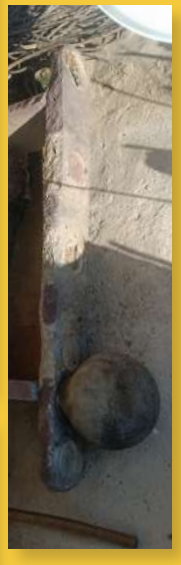

संस्कार एवं अन्य गीत

यूँ तो भारत में जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कार माने जाते हैं, पर कोल समुदाय में सभी संस्कार नहीं होते। वे उतना ही मानते हैं कि उनकी आजीविका भी बाधित न हो और परम्पराओं का निर्वहन भी होता रहे। कभी-कभी तो यह तक देखा गया है कि कुछ महिलाएँ गर्भावास्था के अंतिम दिनों तक खेतों-खदानों या वन उपज संग्रह के कार्यों में लगी रहती हैं।

शोध-सर्वेक्षण के दौरान हमें पहरुआ नामक एक युवक मिला जो हमारी काफी मदद कर रहा था। जब हमने उसकी दादी माँ से पूछा कि 'अम्मा जी आपने अपने इस पोते का नाम पहरुआ क्यों रखा था? तो उस बूढ़ी दादी ने बताया कि- 'इसकी माँ लकड़ी लेने पहाड़ गई थी और यह वहीं पैदा हो गया, अस्तु इसका नाम पहरुआ रख दिया गया।'

यूँ भी अक्सर देखा जाता है कि छठी हो जाने के पश्चात् मजदूरी करने वाली कोल महिलाएँ एक टोकने में पुआल की शथरी बिछा और बच्चे को उसमें लिटा खेत-खलिहान जाने लगती हैं। भूत-प्रेत न लगें, अस्तु उसी में लुहार द्वारा बनाया कजरौटा भी रख लेती हैं। किन्तु इसके बावजूद भी जो मौखिक परम्पराएँ हैं या बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ बच्चों के जन्म के समय जो भी एहतियात बरतती हैं, वह इस प्रकार हैं।

जन्म

इसके लिए घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ ऐसा कमरा चुनती हैं, जिसमें देवालय न हो। यदि एक ही कमरा हुआ तो देवालय से दूर दूसरे कोने में या फिर मिट्टी की दीवाल वाली पशुशाला भी हो सकती है। बच्चा जन्मने के पहले उस कमरे को साफ करके गोबर से लीप दिया जाता है और उस समय वहाँ घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ आ जाती हैं जो उसकी मदद करती हैं। उसे पहनने के लिए अन्य कपड़ा बदलवाती हैं। बाद में उस बच्चे का नाल छेदन बसोर या चर्मकार जाति की महिलाएँ करती हैं। नाड़ा काटने के पश्चात् घर की सफाई कर वहीं एक घड़े को फोड़ खप्पड़ बनाती हैं। फिर नाड़ा समेत समस्त चीजों को उसी खप्पड़ में राख के साथ भरकर घर से दूर किसी झाड़ी में रख आती हैं। इस दरम्यान दो दिन महिलाओं को कुछ भी खाने को नहीं दिया जाता। मात्र कटाई नामक एक लकड़ी और पीपल के पके पानी को पिलाया जाता है। फिर उस महिला को नीम के पत्तों के कुनकुने पानी से नहलाया जाता है और तीसरे दिन गुड़ के लड्डू एवं चौथे दिन पुराना चावल में हल्दी मिलाकर खिलाया जाता है, उसे बिलुरी भात कहा जाता है। घर की साफ-सफाई हो जाने के बाद ननद उस घर के फर्श की पोताई करती है, जिसे 'सोबर पोतना' कहा जाता है। इस कार्य का उसे नेग मिलता है। लेकिन अब प्राय: सभी प्रसव अस्पतालों में होते हैं, अस्तु घर में नेग की मात्र औपचारिकता ही होती है।

जन्म के छठें दिन छठी की जाती है, जिसमें घर की साफ-सफाई होती है। प्रसव वाली महिला नीम के पत्ते के साथ पके कुनकुने पानी से स्नानकर तेल आदि लगाकर माँग भर अपना शृंगार करती है। उसके बाद नाई की पत्नी उसके पैर में महावर लगाती है। यह महावर वह परिवार की अन्य महिलाओं को भी लगाती है, जिसका उसे नेग मिलता है। फिर शाम के समय कुआँ पूजन की रस्म होती है, जिसमें समूचे मुहल्ले में बुलौआ दिया जाता है और समस्त महिलाएँ कुआँ पूजन वाला गीत गाते प्रसवा महिला को आगे लेकर चलती हैं। फिर कुआँ का सात फेरा लगाकर वह महिला पानी भरती है, जिसके कुएँ से वापस आने पर द्वार पर खड़ा देवर उसका घड़ा उतारता है। उसे घड़ा उतराई का नेग मिलता है। किन्तु अगर बारहों की रस्म हुई तो छठी के बजाय कुआँ पूजन वाली समस्त रस्में बारहों के दिन ही होती है।

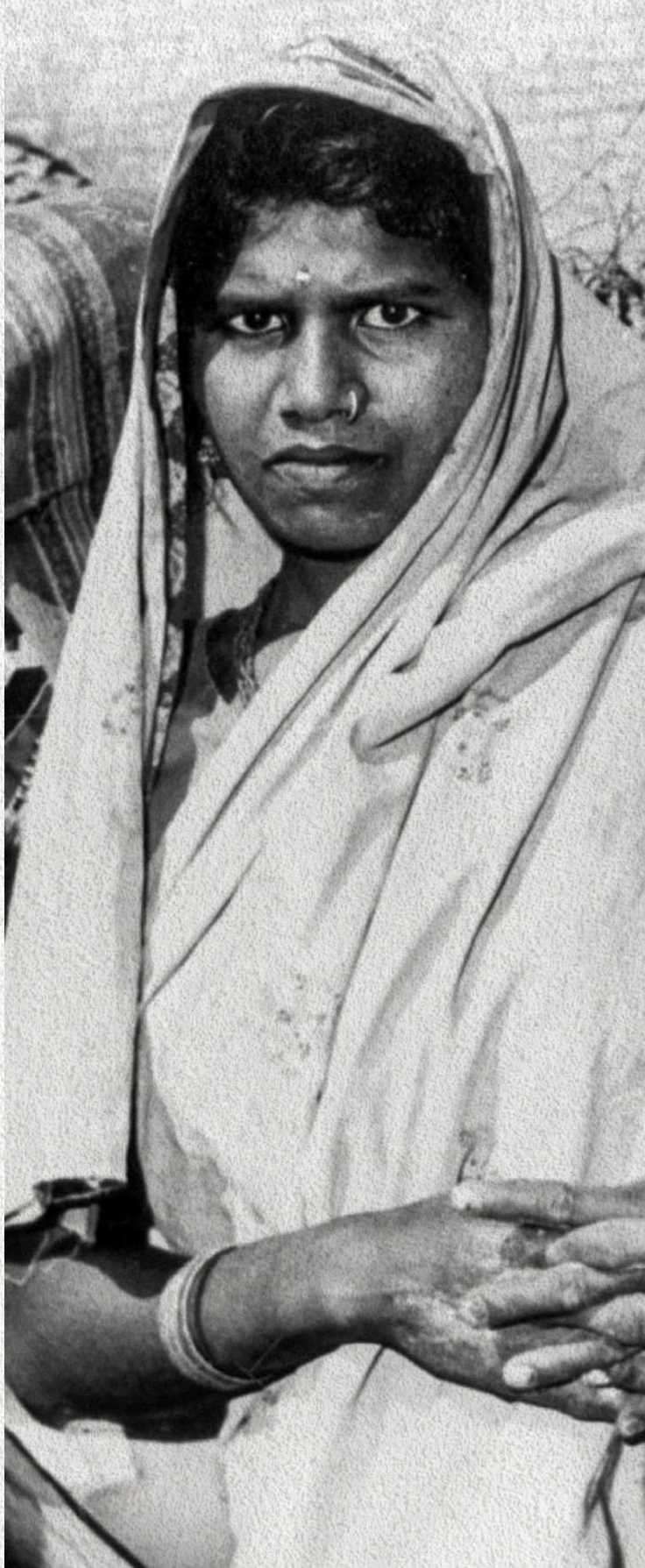

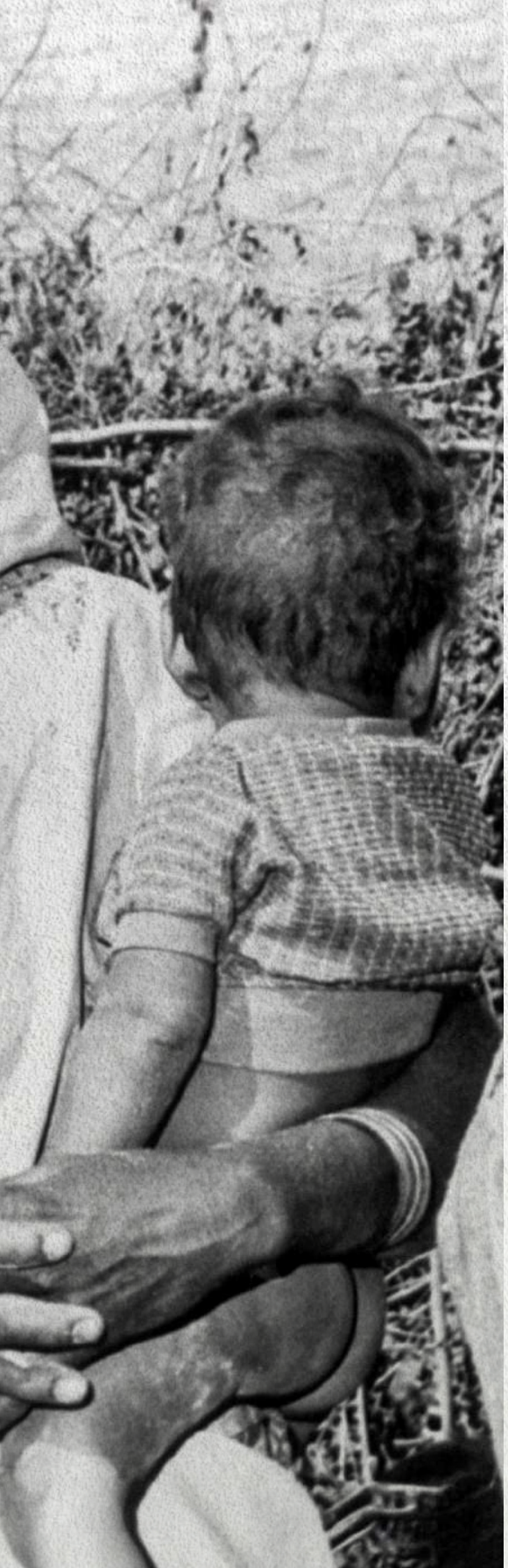

नामकरण

कोल समुदाय के बच्चों के नाम रखने के कई तरीके होते हैं। आमतौर पर नाम घर की बड़ी बूढ़ी दादी, माँ, चाची, ताई, बुआ आदि रखती हैं। नामकरण के आधार कुछ इस तरह के होते थे, अस्तु नाम ढूँढने में अपढ़ महिलाओं को भी कोई कठिनाई नहीं होती थी। उदाहरण के लिए -

सप्ताह के दिनों के आधार पर - इसमें जिस दिन बालक पैदा हुआ, उसी पर आधारित नाम रख दिया जाता है। यथा- मंगल, मंगलबा, मंगलिया, मंगाली, बुधई, बुधुआ, बुद्धा, सुरजा, सुरिजदीन, सुराजी, सुरिज बली, बुधिया और सुकबरिया आदि।

महीनों के आधार पर - साल के बारह महीनों में जो महीना सरल लगता या उस माह में कोई बालक जन्म लेता तो उसका नाम उसी से जोड़कर रख लिया जाता। ***उदाहरण-*** चइता, चइतलाल, बइसाखू लाल, बइसखुआ, जेठुआ, जेठाईलाल, समना, समइया, भदइयाँ, कुमरबा, गहानू, पुसउआ, फगुना, गहनुआ, फगुनी, समनी, कुमरिया, मेंघिया।

तिथि-त्योहारों के आधार पर - इसमें नाम इस तरह से रखे जाते- बसन्ता, बरसइता, होरी लाल, दशरथ, पंचम लाल, पचइयाँ, सतइयाँ, अठइयाँ, दसइयाँ, पुनउआ, दुइजी, तिजिया, पुनिया आदि।

देह रूप-रंग के आधार पर - मिर्रा, टिडुआ, टिर्रा, बजरंगा, कलुआ, गोरेलाल, भुरइयाँ, भूरा, बंटा आदि।

देवी-देवताओं से सम्बद्ध नाम से - कालकादीन, शारदादीन, चंदीदीन, भैरमा, चंदिका, चंदू, मातादीन, अघोरिया आदि।

एक-दूसरे के सुने हुए नाम - मराबी, संता, बलई, बोड्डा, बारेलाल, मिलापी, मोहना, मुरलिया, धिंना, सनसरिया, सुदामा, सहइयाँ, पहरुआ, जंगलिया, बेटाई लाल, सिद्धा आदि। अब जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार बढ़ा है तो नामों में भी काफी परिवर्तन आया है। अब तो राजेश, कमलेश, महेश, दिनेश, महेंद्र, धर्मेंद्र जैसे नाम रखे जाने लगे हैं।

रोइना खोसना

रोइना खोसना एक तरह की पुत्र जन्म की सूचना है। यह सूचना देने शिशु का फूफा या जीजा जाता है और ननिहाल परिवार के दरवाजे पर नीम की एक टहनी लटका देता है। फिर इस खबर को पाकर ननिहाल परिवार से उसे पुरस्कार के रूप में बर्तन या नगद रुपये दिए जाते हैं।

पसनी

पसनी प्राय: उस महिला के मायके में होती है, जब प्रथम जन्में बालक को उसकी नानी या मामी खीर बनाकर खिलाने की रस्म करती हैं और उसे चाँदी की तैती, ताबीज या हाही आदि बनवा कर गले में बाँध देती हैं। कहीं-कहीं मुहल्ले में बुलौआ देकर गीत भी गाये जाते हैं।

मुंडन

यूँ तो मुंडन 2-3 वर्ष में चैत्र रामनवमी के एक दिन पहले अष्टमी की पुजाई के समय ही होता है। यह गाँव के सार्वजनिक देवालय में कराया जाता है। यदि मुंडन मैहर में शारदा माता या किसी अन्य देवी-देवताओं के स्थान में करने के लिए बदा गया हो तो कभी-कभी एक साल में ही हो जाता है। इस तरह जब नाई मुंडन करता है तो उस बच्चे की बुआ आटे की लोई बना उसमें समस्त बालों को रखती जाती है और बाद में किसी नाले, कुंड या पवित्र स्थान के आस-पास उसे रख दिया जाता है। मुंडन में भी बुआ को नेग मिलता है।

विवाह

कोल समुदाय में छठी के बाद सारी औपचारिकताएँ पूरी हो जाती हैं और 8-10 दिन बाद वह महिला काम पर जाने लगती है। उसके पश्चात् पसनी-मुंडन आदि के बाद वर्षगाँठ जैसी औपचारिकताएँ नहीं होती। बाकी आगे की परम्पराएँ अमूमन नहीं होतीं। बाद में विवाह में ही दिखती हैं।

विवाह पक्का करना

इसके लिए रिश्तेदारों द्वारा ही चर्चा होने लगती है कि अमुक जगह लड़की है और अमुक लड़का। इस तरह दोनों परिवारों में मध्यस्थता करने वाले को 'चढ़बाइक' कहा जाता है और जिनके यहाँ लड़का या लड़की होती है, वह 'कजबइक' कहलाता है। चढ़बाइक अमूमन लड़के-लड़की के फूफा या मामा होते हैं। इधर-उधर चर्चा हो जाने और जानकारी पक्की हो जाने के पश्चात् लड़के का पिता, बड़े पिता या बब्बा उसके मामा और फूफा के साथ लड़की के पिता के गाँव जाते हैं और किसी पूर्व के रिश्तेदार के घर में रुकते हैं। फिर उसी के साथ लड़की के पिता के यहाँ जाकर विवाह पर चर्चा करते हैं। उस चर्चा में उस परिवार के बड़े-बूढ़े एवं समाज का मुखिया भी शामिल होता है।

गोड़धोई

यदि विवाह पक्का हो गया तो दूसरे दिन गोड़धोई की रस्म होती है। रात्रि में दारू तो चलती ही है पर स्वभाव से उत्सवधर्मी कोल अपने दादर गीत का भी आनंद लेने में नहीं चूकते। दूसरे दिन गोड़धोई और भोजन के समय महिलाओं द्वारा गारी गीत भी गाये जाते हैं, जिसके बदले वर पक्ष का होने वाला समधी पान-सुपाड़ी एवं कुछ रुपये एक थाली में रखकर भेंट करता है। उसके पश्चात् पंडित को बुलाकर लग्न लिखाया जाता है और विदा के समय हल्दी-चूने को मिलाकर बना हुआ रंग भी डाला जाता है, जिसे रंग हल्दी से स्वागत होना कहा जाता है।

जाते समय वर का पिता या बब्बा कन्या को कुछ रुपये भी भेंट करता है। किन्तु यदि विवाह पक्का न हुआ तो जाति बिरादरी के होने के नाते रात्रि में तो विवाह के इच्छुक लोग वहाँ रुक जाते हैं, पर दूसरे दिन खूब सुबह मुँह अंधियारे ही चले जाते हैं। गोड़धोई और लग्न पत्री के पश्चात् विवाह का त्यौना देने का कार्य शुरू हो जाता है। इस हेतु हल्दी चावल से समस्त रिश्तेदारों को निमंत्रण दिया जाता है, जिसमें परिवार के लोग और लड़के का फूफा भी सहयोग करता है।

मागरमाटी

मण्डप के पहले मागरमाटी की एक रस्म होती है, जिसमें विवाह के कार्य हेतु चूल्हे आदि बनाये जाते हैं। इसके लिए लग्न लिखते समय ही पंडित जी बता देते हैं कि कौन राशि वाली लड़की सात कुदाल मारकर सर्वप्रथम मिट्टी खोदेगी और महिलाएँ किस दिशा में खोदने के लिए उसके साथ जायेंगी। फिर महिलाएँ उस दिशा की ओर गीत गाती हुई जाती हैं और सात कुदाली मार प्रतीक स्वरूप थोड़ी-सी मिट्टी लाती हैं। शेष मिट्टी किसी अच्छे स्थान से लाकर चूल्हे आदि बनाए जाते हैं, जिसमें दो छोटे चूल्हा लावां भूँजने और मंत्री पूजा का भोजन पकाने हेतु होते हैं जो मण्डप के नीचे रखे जाते हैं बाकी दो-तीन बड़े-बड़े चूल्हे अन्दर रखे जाते हैं, जिनमें आमंत्रित लोगों के लिए भोजन पकता है।

बारात प्रस्थान

पहले कोलों के विवाह अमूमन आसपास के क्षेत्र में ही होते थे, ताकि वे सुबह खा-पीकर चलें तो शाम तक वहाँ पहुच जायें। अब यातायात सरल हो जाने के कारण 40-50 किलोमीटर की परिधि तक विवाह सम्बन्ध होने लगे हैं।

बारात जाने के पहले नहछू होती है, जिसमें वर को नहलाकर जामा-जोड़ा आदि पहना सिर पर मौर बाँधी जाती है। उसके पहले एक छोटे से घड़े को वर के हाथ में लेकर चलने के लिए रंग, गोबर और चने की दाल से गोठकर कलात्मक बना रस्सी से बाँध दिया जाता है। उसे रघवार कहा जाता है। पहले वर पालकी में जाता था, बाकी बारात अपनी ढोलक समेत अमूमन पैदल ही जाती थी और उस खटोले से बनी पालकी को रिश्ते के फूफा या जीजा आदि ले जाते थे, पर अब अधिकांश बारातें दो पहिया अथवा चार पहिया वाहनों से जाती हैं।

मण्डप

मण्डप में नौ थून्हीं, नौ मलगा एवं एक पूरे बाँस की कमटी लगती हैं। साथ ही बढ़ई या सुआसा द्वारा पलाश, सलई या गुरजा की लकड़ी का मंगरोहन बनाकर लाया जाता है, जिसे मण्डप के मध्य में गड़ाया जाता है। यह इन लकड़ियों का इसलिए बनता है कि वह काटने में काफी कोमल होती हैं। यूँ तो मंगरोहन पुरुष आकृति का प्रतीक है, पर वह कई तरह का बनता है। उसके चारों ओर चार भुजाएँ एवं तोते की आकृति का सुआ कटेला भी लगाया जाता है। सेमी के पत्ते के रंग और महावर से रंगकर बढ़ई इसे काफी आकर्षक बना देता है। उसे आँगन के मध्य में गाड़ने के पहले दर खोदकर उस में हल्दी-सुपाड़ी-पान एवं पैसा डाल दिये जाते हैं। फिर परिवार के समस्त पुरुष संयुक्त रूप से पकड़कर उस मंगरोहन को लाते हैं और मण्डप के नीचे आँगन के मध्य में गाड़ देते हैं। उसके साथ एक ऊमर पेड़ की डाल भी गड़ाई जाती है और मण्डप के नीचे सबरी एवं मूसल रखे जाते हैं। साथ ही दरवाजे में बाँस की दो कमटी और सूमा के साथ आम की पत्तियों का बंदनवार भी लगाया जाता है।

मंगरोहन के साथ वर के बैठने के लिए बढ़ई एक पीढ़ा भी लाता है जो बाद में दहेज में सुआ कटेला के साथ वर को सौंप दिया जाता हैं। मण्डप गाड़ने के लिए पूरे मोहल्ले में बुलौआ दिया जाता है। इस तरह थुनिहा मलगा डाल एवं जून्हा से उसे बाँध समस्त लोग मण्डप तैयार कर देते हैं। छाया के लिए मण्डप में जामुन के पत्ते डाल दिए जाते हैं। उसी दिन लावा भूँजने के लिए पलाश की छोटी-छोटी लकड़ी भी लाई जाती है, पर उसे वही युवक छोटी-सी कमरी की तरह बनाकर और बाँधकर लाता है जिस राशि वाले बालक का पंडित जी द्वारा नाम सुझाया गया हो। मण्डप पड़ चुकने के बाद वह बालक एक फीट की छोटी-सी काँवर बना कांधे पर रखकर खड़ा होता है, जिससे पानी उतारकर मंगरोहन के पास रख दिया जाता है। जंगल से इस लकड़ी को लाने हेतु उस लड़के को कलेवा के रूप में गुड़ एवं चने की दाल दी जाती है। मण्डप पड़ने के बाद उत्तर-पूर्व के कोने में एक चुकड़ी में थोड़ी-सी शराब को डाल यह कहकर मण्डप में लटका दिया जाता है कि- हे मदाइन देवी! अब तू विवाह सम्पन्न होने तक इसी पवित्र स्थान में निवास करना। इस तरह मण्डप पड़ जाने के पश्चात् प्रतिदिन सुआसिन उसी के नीचे उस कन्या का हल्दी-तेल लगाकर उबटन करती है और स्नान कराती है।

माय पूजा

मण्डप के दूसरे दिन माय पूजा होती है। इसके लिए बेर के बराबर आकार की आटे की माय बनाई जाती है, जिन्हें तेल से सिराकर एक घड़े में भरा जाता है। माय विवाह तक सुरक्षित रहे इसके लिए घड़े के मोहड़े में एक मिट्टी की परई रख गीले आटे से छाब देते हैं और फिर समस्त परिवार के लोग संयुक्त रूप से उठाकर देवालय में रख देते हैं। उसके पश्चात् मण्डप के नीचे बने चावल, उड़द की दाल एवं बरे को सभी परिवार के लोग पलाश के पत्ते में परोसकर खाते हैं। उसी दिन कुम्हार विवाह में लगने वाले घड़े परई लावां भूँजने का पैना आदि समस्त बर्तन दे जाता है, जिसका उसे निर्धारित मूल्य दिया जाता है।

जनवास

कोल समुदाय विवाह अमूमन गर्मी के दिनों में ही करता था, जिससे कपड़े बिस्तर आदि की कोई दिक्कत न हो। अस्तु बारात का जनवास भी किसी पेड़ के नीचे या फिर गाँव के किसी सम्पन्न व्यक्ति के परछी में दिया जाता था, किन्तु अब अमूमन हर गाँव में स्कूल भवन या पंचायत भवन हैं, बारात को अब वहीं ठहराया जाता है।

लहकौर

बारात लेकर जाने वाला दूल्हा जब तक विवाह नहीं हो जाता, तब तक मण्डप के नीचे भोजन नहीं करता। अस्तु उसे जनवास में ही ले जाकर भोजन कराया जाता है। इस रस्म को लहकौर कहा जाता हैं। जनवास में उसे लहकौर खिलाने के लिए उसकी साली अपनी सहेलियों के साथ जाती है और अपने हाथ से पांच-सात कौर खिलाने की रस्म पूरी करती है।

पानी पिलाई नेग

विदा के बाद जब गाँव से दो-चार किलोमीटर दूर बारात चली जाती है तो वाहन को रोक वधू को पानी पिलाया जाता है। देवर किसी लोटा या गिलास में अपनी भाभी को पानी पिलाता है और बदले में भाभी पानी पीने के पश्चात् उसी बर्तन में कुछ पैसे रख देती है।

कलेवा की रस्म

दूसरे दिन विदा होने के पहले दूल्हे का एक नेग कलेवा कराई भी होता है। इसमें दूल्हा अपने छोटे भाइयों के साथ कलेवा करने जाता है, जिसके अंगरक्षक के रूप में सुआसा की भूमिका में उसका फूफा भी होता है। वहाँ उसका ससुर बार-बार कलेवा करने का आग्रह करता है, पर वह किसी नेग की माँग करता है, जिसमें प्राय: घड़ी-साईकल आदि होती हैं। बाद में नेग में राजी हो जाने पर वह कलेवा करता है। कलेवा के बाद साली-सरहजें तमाम लड़कों के ऊपर पानी आदि डाल देती हैं। इसमें सबसे अधिक फजीहत बेचारे सुआसा की होती है। कलेवा के बाद दूल्हा मण्डप के सात बन्धन छोड़ता है और समस्त रस्म पूरी हो जाती है। बाद में दूल्हे का पिता अपने भाइयों के साथ मण्डप के नीचे जाता है, जहाँ उसे समधिन विदाई में रुपये देती हैं। वह मण्डप का बंधन छोड़ता है, जिसका नेग धोती-साफा आदि के रूप में उसका समधी चुकाता है।

इसके पश्चात् विदा का समय आता है जिसमें दहेज में मिले समस्त बर्तनों, गाय, बछिया, बकरी आदि का लेखा-जोखा होता है और समस्त वस्तुओं को बारात प्रमुख दूल्हे के दादा, बड़े पिता या पिता को सौंप दिया जाता है, जिसके बाद दोनों समधी जोहार भी करते हैं और लड़की का पिता वर के पिता का चरण छूता है।

विदा के समय मंगरोहन बनाने वाला और बारात का जनवास ताकने वाला अपने काम का नेग माँगता है, जिसे बर्तन या रुपये के रूप में बारात का प्रमुख चुकाता है और जोहार करके सभी बाराती चल देते हैं। प्राचीन समय में घण्टों बारात एवं घरात की महिलाओं के जवाब-सवाल में गीत होते थे, पर अब यह परम्परा समाप्त है। किन्तु उधर दूल्हे के घर में बसी के दिन जिदवा या बहलोल नामक एक लोकनाट्य होता है, जिसमें स्त्री-पुरुष सभी के पात्रों की भूमिका में महिला पात्र ही होती हैं। यह इतना अश्लील होता है कि पुरुषों का देखना वर्जित होता है। कभी-कभी कुछ पुरुष-महिलाओं का वेश रख देखने की धृष्टता भी करते हैं, किन्तु पहचान में आ जाने पर महिलाएँ उनकी बेलन से भरपूर कुटाई करती हैं।

प्राचीन समय में जब बाल विवाह प्रथा थी तो पांच या सात वर्ष बाद एक रस्म गौने की भी होती थी, जिसमें वर की ओर से लोग जाते थे। उसे 'सुदिन धराने' जाना कहा जाता था। उसके लिए वर पक्ष के लोग पूरा 'बड़ी आकार की पूड़ी' लेकर जाते और दरवाजे पर रख देते, जिसका आशय था कि वह गौना धराने आये हैं। फिर वधू पक्ष वाले पानी उतार उसे अन्दर रख लेते और निर्धारित तिथि भी बता दी जाती थी, किन्तु अब आमतौर पर विवाह के साथ ही वधू की विदा हो जाती है।

द्वारचार

जब बारात जनवास में अपना सामान आदि रख व्यवस्थित हो जाती है तो कन्या पक्ष का सुआसा मसाल जलाकर घरातियों के साथ बारात को द्वारचार हेतु बुलाने जाता है। तब बारात जनवास से द्वारचार के लिए प्रस्थान करती है, जिसमें पहले आगे-आगे पालकी में दूल्हा होता था और पीछे-पीछे समस्त बारात। किन्तु अब पालकी का स्थान जीप या कार ने ले लिया है। जब बारात द्वार में पहुँचती है तो कन्या का पिता उसे वाहन से उतार अपनी गोदी में उठाकर द्वार तक लाता है। उसके पहले उसे दूल्हे को कुछ नेग देना पड़ता है। पहले यह नेग गाय, बैल, बकरी आदि होते थे, पर अब अमूमन साइकल और सम्पन्न परिवार में मोटर साइकिल हो गया है।

चढ़ाव

द्वारचार की रस्म पूरी होने के पश्चात् एक रस्म चढ़ाव की भी होती है। इसमें वर पक्ष की ओर से जो गहने आदि लाए जाते हैं, उन्हें कन्या को भेंट किया जाता है। प्राचीन समय में यह चाँदी की सुतिया, सिक्का की हेवाल या छन्नी वनबरियाँ आदि होती थीं, पर अब मंगलसूत्र-पायल और कमर का डोरा आदि होते हैं। बाद में ससुराल में पति-पत्नी चाहें तो अपनी कमाई से और भी जेवर बनवा सकते हैं, पर चढ़ाव में अमूमन यही ले जाने की परम्परा है।

चढ़ाव के समय ही वर पक्ष की ओर से आई व्यंजनों वाली दौरी में रखकर कन्या की माँ उसकी दादी के लिए धोती एवं सुआसा के लिए परदनी (मर्दाना धोती) भी भेंट की जाती है। पर सुआसिन की धोती माँग बहोरते समय दी जाती है। पहले चढ़ाव के बाद भोजन, रात्रि विश्राम और फिर गान गम्मत ही होता था, पर अब कोल समुदाय में भी एक रात्रि की बारात एवं सुबह विदा हो जाती है, अस्तु विवाह रात्रि में ही कर लिया जाता है। विवाह दोनों प्रकार का होता है। पढ़े-लिखे विकसित परिवार में उसे पण्डित सम्पन्न कराते हैं, पर दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र में अभी भी पारम्परिक ढंग से ही होता है जिसे सुआसा और अन्य जानकार लोग सात फेरा लगवाकर सम्पन्न कराते हैं। यदि कन्या पक्ष के लोगों को भड़बा वासन आदि पखारना हुआ तो आ-आकर बर्तन को रखते हुए एक परात में घुली हल्दी से वर कन्या के पाँव पखारते हैं।

ऊमर से विवाह की रस्म

विवाह के पहले जब वर गाँठ जोड़ने के लिए देवालय जाता है तो उसके पहले ऊमर वृक्ष के डाल के साथ विवाह की एक रस्म सम्पन्न होती है। शायद यही कारण है कि मंगरोहन के साथ एक ऊमर की डाल भी गड़ाई जाती है। वर अपने हाथ में उस 'रघुवंश' नामक कलात्मक घड़े को लिए हुए मण्डप के नीचे जाता है, जिसे कोल लोग 'रघरवार' कहते हैं और वहाँ जाकर वह पहले ब्याह के प्रतीक स्वरूप ऊमर वृक्ष में अपने घड़े को सात बार घुमाता है, फिर देवालय में जाकर देवताओं के ऊपर चावल डालता है, तब कन्या की गाँठ जोड़कर उसे विवाह हेतु मण्डप के नीचे लाया जाता है।

इस ऊमर की डाल और मानव आकृति के प्रतीक मंगरोहन के विवाह की परम्परा कोलों में शायद गैर जनजातियों से आई हुई दिखती है, क्योंकि इस तरह का मिथक समस्त जातियों में है। महाभारत काल के एक मिथक के अनुसार गांधार नरेश की पुत्री गांधारी का विवाह जिस किसी भी राजकुमार से तय होता तो गंधारी के पूर्व जन्म के ऊमर (गूलर) वृक्ष के श्राप के कारण वह राजकुमार मर जाता। बाद में जब भीष्म पितामह ने अंधे धृतराष्ट्र से गांधारी का विवाह कराया तो ज्योतिषियों के सलाह के अनुसार उसका पहला विवाह ऊमर के प्रतीक मंगरोहन के साथ हुआ, तभी से यह परम्परा चल पड़ी। अस्तु कोल वर भी अपना घड़ा सात बार ऊमर और मंगरोहन के चारों ओर घुमाता है। अन्तर यह है कि महाभारत के मिथक के अनुसार गांधारी का विवाह मंगरोहन रूपी प्रतीक से हुआ, पर यहाँ कोल वर का विवाह ही ऊमर से होता है जिसे ऊमर के साथ विवाह कहा जाता है।

परछन

जब वर-वधू गाँव की सीमा के पास पहुँचते हैं तो उनके वाहन के चारों ओर लोटे का पानी उड़ेलते हुए पानी उतारा जाता है। कोल समुदाय का कथन है कि ऐसा करने से भूत-प्रेत आदि गाँव की उस सीमा से लौट जाते हैं। किन्तु जब बारात का वाहन द्वार पर पहुँच जाता है तो परछन करने वाली दूल्हे की माँ उस वाहन की सात बार प्रदक्षिणा करती है और फिर वर-वधू को चावल-हल्दी का टीका लगाती है। परछन में मथानी-मूसल ढनगाती हैं और महिलाएँ गीत गाती हैं।

परछन के पश्चात् वर-वधू घर के देवालय में जाते हैं, जहाँ देवताओं के चावल-अक्षत डालने के बाद गाँठ छोड़ दी जाती है। उसके पहले यहाँ भी पैला ढकेल रस्म होती है। यहाँ दुल्हन सात बार पैला भरती है और दूल्हा लात मार-मारकर ढकेलता है। दूसरे दिन फिर उसी प्रकार गाँठ जोड़कर गाँव के सार्वजनिक देवालय में जाते हैं और वहाँ भी गाँठ छूटती है।

पैला ढकेल

जब विवाह संपन्न हो जाता है तो वर-वधू घर के देवालय में अपनी गाँठ छोड़ने जाते हैं। इसी समय एक रस्म पैला ढकेल की भी होती है जिसमें वर सात बार पैला भरता है और वधू उसे बार-बार ढकेल देती है। गाँठ छूटने के पश्चात् वर पहली बार मण्डप के नीचे भोजन करता है। जब वह जूता उतारकर भोजन करने जाता है तो साली मौका देख उसके जूते छिपा देती है और फिर जूते तभी देती है, जब वह अपने जीजा से मुँह माँगा नेग पा जाती है।

गारी का नेग

प्राचीन समय में जब तीन दिन की बारात होती थी तो बारात के दूसरे दिन सुबह बारातियों को नास्ते में चने की दाल दी जाती थी और शाम तक भोजन। फिर उस भोजन के समय दी हुई गारी (गीत) के बदले वर पक्ष के समस्त समधी एक थाली में पान, सुपाड़ी, लौंग एवं नारियल बताशा रखकर महिलाओं को गारी का नेग चुकाने जाते थे। एक दिन की बारात होने के कारण यह नेग प्रथम दिन ही भोजन के पश्चात् चुका दिया जाता है।

मुँह दिखाई

इसके पश्चात् एक रस्म होती है- मुँह दिखाई, जिसमें टोले-मुहल्ले भर की महिलाएँ आती हैं और घूँघट हटाकर सभी को दुल्हन का मुख दिखाया जाता है। इस रस्म में समस्त बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ उसे कुछ पैसे भेंट करती हैं।

खिचड़ी

उसी दिन बारात से लौटे बारातियों को जब पंगत में भोजन कराया जाता है तभी एक रस्म खिचड़ी खवाई की भी होती है। इसमें जब सभी भोजन परोस दिया जाता है तो वधू आकर सबके पत्तल में थोड़ा-थोड़ा खिचड़ी परोसती है। बाद में खिचड़ी खाने वाले उसे कुछ पैसे देते हैं और उस पैसे से उस वधू के लिए कुछ गहने बनवा दिए जाते हैं। खिचड़ी ससुर, जेठ, देवर, ननदोई आदि ही खाते हैं। उस वधू की जिठानी आदि के मायके के लोगों को खिंचड़ी नहीं दी जाती। इसके पश्चात् अपने-अपने घर जाने के पहले लोग कुछ रुपये भेंट करते हैं, जिसे व्यौहार देना कहा जाता है। बदले में माय पूजा के समय माय से भरा घड़ा जो देवालय में रखा गया था, उसे खोल पाँच-पाँच माय सभी को दी जाती है।

इस तरह यह विवाह संस्कार समाप्त हो जाता है। मण्डप में बंधी दारू की चुकड़ी को भी छोड़ दिया जाता है। फिर बचे-खुचे लोग दारू पीकर दादर गीत का आनंद लेने में स्वतंत्र हो जाते हैं। कुछ कोल समुदाय के बुजुर्गों ने बताया कि प्राचीन समय में गाँव के मुखिया या अपने किसान के बखरी में भी दादर करने की परम्परा थी, जिसमें दूल्हा-दुल्हन भी शामिल होते थे। उसके बदले में उन्हें बखरी से कुछ भेंट-पुरस्कार आदि भी दिए जाते थे, पर अब वह परम्परा पूरी तरह समाप्त है।

मृत्यु संस्कार

कोलों में मृत्यु-संस्कार भी है जो पूरी तरह मौखिक परम्परा में चलता है।
मृत्यु-संस्कार तीन तरह का होता है- दाह-संस्कार, जल प्रवाहन और मिट्टी देना।

मिट्टी देना

विवाहित लोगों का मुख्यत: दाह संस्कार ही किया जाता है। विषम परिस्थिति में कहीं बाहर रहने पर मुखाग्नि देकर किसी नदी में जल प्रवाहन भी कर देते हैं। किन्तु अविवाहित छोटे बच्चों की मिट्टी देने की ही परम्परा है। इसी तरह कभी-कभी टी.बी., कैंसर जैसी बीमारियों में मरने वाले सयानों को भी मिट्टी ही दी जाती है, क्योंकि बड़े-बूढ़ों की मान्यता थी कि दाह संस्कार करने से करने वालों को भी यह रोग लग जाते हैं।

बच्चों के गुजर जाने पर टिकठी वगैरह नहीं बनाई जाती। उन्हें गोद में ले जाकर स्नान कराया जाता है और मिट्टी खोदकर दफना दिया जाता है। उसके पहले शव के ऊपर गुड़ की पाँच डली भी रखी जाती है। यही स्थिति परदेश में विषम परिस्थिति में मरने वालों की भी होती थी। किन्तु अब यातायात सुविधा के कारण जल प्रवाहन नहीं होता। लेकिन बुजुर्ग और विवाहित लोगों के मरने पर सभी मौखिक और प्रचलित परम्पराओं का पालन करना पड़ता है। जैसे ही कोई घर-परिवार का सदस्य मरणासन्न अवस्था में होता है तो उसे खाट से उतार जमीन पर लिटा दिया जाता है। सर्वप्रथम उसके कफन हेतु नया कपड़ा लाना पड़ता है, तब तक कुम्हार के यहाँ से दो घड़े लाये जाते हैं। एक तो श्मशान तक आग ले जाने के लिए और दूसरा अस्थि संचय के लिए। फिर टिकठी के प्रबन्ध में जुट जाते हैं। यदि मृतक खाट में पड़े-पड़े ही मर जाता है तो उस खाट को ही उल्टी करके शव को लिटाकर श्मशान ले जाया जाता है। यदि टिकठी बनी तो उसके लिए पाँच हाथ की दो समानान्तर लकड़ी रख उसमें साढ़े तीन हाथ तक 1-1 हाथ के पाँच टुकड़े काट एवं बाँधकर सीढ़ी के आकृति का बना लेते हैं। फिर उसमें कांस घास को बिछा कपड़े से लपेट मृतक को लिटाकर और कांस के शूमा से बाँधकर श्मसान ले जाया जाता है। उस शव यात्रा में दाह संस्कार करने वाले के हाथ में आग का घड़ा रहता है जो आगे-आगे चलता है और चार लोग उस टिकठी को कंधे पर धरकर चलते हैं, जहाँ दाह संस्कार किया जाता है।

कोलों के घर में अमूमन लकड़ी की समस्या नहीं रहती, अस्तु कुछ लोग पहले से ही पर्याप्त लकड़ी का प्रबन्ध कर देते हैं।

मृतक के शव के वहाँ पहुँच जाने पर उसे नहलाकर नया कपड़ा पहना दिया जाता है और उसी से बचा अतिरिक्त कपड़ा नहाकर दाह-संस्कार करने वाला भी पहन लेता है। दाह संस्कार बड़ा पुत्र करता है, पर यदि पुत्र न हुआ तो भाई या फिर पत्नी करती है। उसके बाद मृतक को चिता में लिटाने के लिए दो लोग और स्नान करते हैं। उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बवत् बनी उस चिता में मृतक को लिटा देते हैं। इसके पश्चात् चिता में आग लगाने की बारी आती है। इसमें दाह संस्कार करने वाला एक लकड़ी में बाँधे हुए कांस के पुरे में आग लगा चिता की सात परिक्रमा करता हुआ हर बार उसके मुँह के पास आग को छुआता जाता है और अंतिम बार पूरी तरह से आग लगा देता है। उसके जल जाने पर सभी लोग स्नानकर तिल को हाथ में लेकर तिलांजलि देते हैं और घर आ जाते हैं। तालाब या नदी के किनारे उरई नामक घास का एक पौधा खोदकर मिट्टी सहित रोप दिया जाता है, जिसे दस दिन तक जल चढ़ाकर तिलांजलि दी जाती है, क्योंकि दस दिन तक उस उरई में ही मृतक का वास माना जाता है।

पुरुषों के घर पहुँचने के पहले महिलाएँ घर की सफाई कर उसे लीप देती हैं और नीम के पत्ते के साथ दरवाजे के बगल में पानी भरा हुआ एक घड़ा रख देती हैं, जिससे प्रतिदिन तालाब या नदी से स्नान करके लौटने वाले परिवार के लोग नीम की उस डाल को घड़े में बोर और जल को छिड़क अपना पैर धोते हैं। किन्तु मृतक अगर महिला हुई तो शव यात्रा में महिलाएँ भी जाकर उसे स्नान कराकर नया कपड़ा पहनाती हैं। सतना के अकही गाँव के कोल समुदाय के कुछ बुजुर्गों ने बताया कोलों में पहले जलाने की परम्परा नहीं थी। शव को दफना दिया जाता था, क्योंकि रोज-कमाने खाने वालों को यह सब करने का समय ही नहीं था।

पान-पतरी फाड़ना

इस रस्म में मात्र कुटुम्ब के लोग ही शामिल होते हैं जो चावल की गोलहथी और गुड़ खाते हैं। पत्तल की कील निकालकर उसे थोड़ा-सा फाड़ देते हैं, जिसे पान पतरी फाड़ना कहा जाता है।

अस्थि संचय

मृत्यु के तीसरे दिन परिवार एवं खास रिश्तेदार आकर अस्थियों का संचय करते हैं, जिनमें पहले पाँच अंगों की पाँच अस्थियाँ पलाश की टहनियों से बनी एक चिमटी से उठाकर घड़े में रखते हैं और बाद में समस्त हड्डियों को उसी घड़े में भरकर सुरक्षित रख दिया जाता है। उसके पश्चात् शुद्धता के एक-दो दिन पहले सफेद कपड़े की झोली में उन्हें डाल किसी पवित्र नदी में प्रवाहित करते हैं। चिता की राख को समीप के नदी-नाले में ही डाल आते हैं। प्राचीन समय में अस्थि विसर्जन सतना-रीवा जिले के कोल प्राय: टमस नदी में करते थे, जो गंगा की सहायक नदी है, क्योंकि उससे तमसा नामक कोल का एक मिथक भी जुड़ा हुआ है। साथ ही गंगा में मिलने वाली उस टमस नदी के आसपास ही कोलों की सबसे अधिक बसाहट है, जहाँ त्यौंथर में टमस के किनारे ही कोल राजा का एक किला भी है। पर यातायात सुविधा के चलते अब अधिकांश कोल गंगा में ही अस्थि विसर्जन करते हैं और जबलपुर के आसपास वाले लोग नर्मदा में।

शुद्धताई का दिन

मृत्यु के दसवें दिन शुद्धताई का दिन होता है जिसकी सूचना नाते-रिश्तेदारों को भी दी जाती है। उसके पहले पूरे नौ दिन तक प्रतिदिन मृतक को घर से कुछ दूर किसी मैदान में एक दोने में भोजन एवं चुकड़ी में पानी रखा जाता है और वहाँ दीपक जलाया जाता है। दसवें दिन सभी लोग किसी नदी-तलाब के किनारे बाल बनवाते हैं। सब लोग साथ ही भोजन करते हैं जिसमें रउतिया कोलों के यहाँ मृत्यु दान लेने वाला कोलमंगन भी शामिल होता है। किन्तु अन्य बान-बिरवा वाले कोलों के यहाँ बसोर को बुलाया जाता है जिसे भोजन के उपरांत दान में अनाज-बर्तन एवं रुपये भी दिए जाते हैं।

रात्रि में जो भोजन बचता है, उसे आधी रात में महिलाएँ बस्ती से बाहर ले जाकर घड़ा सहित फेंक आती हैं, जिसे पाप का घड़ा फोड़ना कहा जाता है, लेकिन भुमिया लोगों के यहाँ दान लेने बरितिया आता है, जो अनाज-पैसा-बर्तन के साथ-साथ मृतक के हाथ की कुल्हाड़ी भी ले जाता है। यदि उनका यजमान सम्पन्न हुआ तो वह एक बकरी की भी माँग करता है।

इस तरह कोलों के यहाँ मृत्यु संस्कार होता है। एक वर्ष बाद बरसी अवश्य होती है, जिसमें बाल बनवाकर परिवार के लोगों को भोजन कराया जाता है।

वस्त्र और आभूषण

कोल समुदाय का जीवन अत्यन्त सरल सहज होता है। जन्म के 10-12 वर्ष की अवस्था से वह काम करना शुरू करता है तो जीवन पर्यंत उसे काम करते रहना पड़ता है। वस्त्र के नाम पर पहले पुरुष वर्ग बंडी, अल्फी, घुटने तक धोती और सिर पर एक पगड़ी बाँधते थे। महिलाएँ धोती-बंडी पहनती थीं। विशेष अवसरों पर कमीज और सिर पर सफेद या पीला साफा होता था, लेकिन वर्तमान पहनावा अब पैंट-शर्ट ही है। काम करते समय गर्मी के दिनों में वे अक्सर उघारे बदन ही काम करते रहते हैं। इसी तरह महिलाएँ धोती-बंडी एवं लड़कियाँ पहले धोतलइया या फरिया पहनती थीं, पर अब सलवार-कुर्ती, फ्रॉक आदि पहनती हैं।

गहनों के प्रति कोल समुदाय में कभी अधिक आकर्षण नहीं रहा, क्योंकि गरीबी उसमें हमेशा आड़े आ जाती थी और काम करते समय गहने पहने भी नहीं जा सकते थे, लेकिन बड़ी-बूढ़ी महिलाओं के हाथ में छन्नी, बनबरिया आदि चाँदी के आभूषण अवश्य देखने को मिलते हैं। किन्हीं-किन्हीं के गले में चाँदी के सिक्कों की हेवाल भी रहती थी, किन्तु सुतिया हर महिलाएँ पहनती थीं। यहाँ तक कि पहले विवाह के समय में दूल्हे के गले में भी सुतिया पहना दी जाती थी। वर्तमान में युवा महिलाओं के पैर में मात्र पायल और गले में मंगल सूत्र ही दिखता है। वस्त्र और गहनों में नवीनता देखी जा सकती है।

गुदना

कोल समुदाय में गुदना का बहुत बड़ा आकर्षण रहा है। महिलाएँ नाक, बाँह, ठोड़ी, छाती, पैर की पिंडुली आदि कई स्थानों में उसे गुदाती हैं। शरीर के अलग-अलग अंगों में उसका अलग-अलग फल भी बताती हैं। उनकी मान्यता के अनुसार बाँह में भाई के लिए, छाती और पैर में पति की सलामती के लिए एवं हाथ की उंगलियों में जेठ के लिए गुदाया जाता है, पर गाल और चेहरे पर वह सुन्दरता के लिए ही होता है। बड़ी-बूढ़ी महिलाओं का कथन है कि मरने के बाद गुदना ही साथ में जाता है, बाकी सब यहीं रह जाता है।

गुदने में तोता, बिच्छू, मोर, मचिया, फूल आदि कई तरह की आकृतियाँ होती हैं। कुछ लड़कियाँ तो हाथ में अपना या अपने भाई का नाम भी लिखाती हैं। साथ ही तोता, मोर, बिच्छू को कुछ पुरुष भी गुदवाते हैं और अपना नाम लिखाते हैं। प्राचीन समय में गुदना गोदने का काम वादी जाति की महिलाएँ करती थीं, जो गोंड की उपजाति है और वही रंग भी बनाती थीं। अब तो समस्त काम मशीन से ही होता है और रंग भी केमिकल का ही उपयोग होता है।

लोक मान्यताएँ

कोल समुदाय लम्बे समय से अन्य समुदायों के साथ रह रहा है। अस्तु यह जान पाना कठिन है कि कौन-सी कोलों की मान्यताएँ हैं और कौन अन्य समुदाय की; किन्तु यह निश्चित है कि टोने-टोटके, मूठ, जड़ी-बूटियों का उत्खनन एवं पेड़-पौधों से सम्बंधित अनेक लोक मान्यताएँ उन्हीं की हो सकती हैं। यह सभी लोक मान्यताएँ कोल समुदाय के अन्य उपवर्गों पर भी लागू होती हैं। कुछ लोक मान्यताएँ इस तरह हैं-

- कोल समुदाय में जेठ का अपनी अनुज वधू से रिश्ता बड़ा पवित्र माना जाता है और उसे छूना पाप समझा जाता है। अस्तु न तो वे एक कमरे में साथ-साथ वे रह सकते हैं, न एक बैलगाड़ी में साथ-साथ कहीं सफर कर सकते हैं।
- अनुज वधू न तो जेठ के चरण छू सकती है, न अपने जेठ की जूठी थाल ही धो सकती है।
- मामा अपने भांजे को सम्माननीय और पूज्य मानता है, अस्तु भांजा कितनी भी अवस्था में छोटा हो, पर मामा ही भांजे के चरण छूता है।
- आकाश में बादल छाए हों और खूब गरज रहे हों, तब मामा-भांजे का एक कमरे में रहना वर्जित है।
- मामा-भांजा का एक नाव में बैठकर साथ-साथ नदी पार करना वर्जित है।
- भानेज की पत्नी न तो मामा को छू सकती है, न उसकी जूठी थाली धोती है।
- यदि किसी को बाघ ने मार डाला हो तो मान्यता के अनुसार उसका भूत बाघ बनकर गाँव के इर्द-गिर्द भ्रमण करता है।
- कोल समुदाय टोने-टोटके, भूत-प्रेत पर अधिक विश्वास करता है। बीमारी आदि आने पर उसके लिए पंडा-गुनिया से झाड-फूँक कराता है एवं वाचा-भभूत आदि लेता है।
- गाय-बकरी आदि जानवरों में मुँहपका, खुरपका रोग होने पर सूपा टोकनी बजाकर समूचा कोलान टोटके करता है। गाँव की सीमा में जा दारू से खैर खूँट को तर्पण कर सुअर के बच्चे को गाँव की सीमा से बाहर छोड़ आता है। उसकी मान्यता है कि सुअर का बच्चा वहाँ से जिस गाँव में जायेगा, इस गाँव को छोड़ जानवरों का रोग भी वहीं चला जायेगा।

- प्राचीन समय में हैजा महामारी आने पर दारू की बूँद टपकाते हुए गाँव की सीमा छेंकी जाती थी और खैर को घेटुला की बलि दी जाती थी।
- कोल समुदाय घर में रोग व्याधि आने पर देवी के यहाँ जवारे बोने का वदना करता है।
- महीने या पाख (पक्ष) की प्रतिपदा को यात्रा करना अशुभ मानता है।
- कोल समुदाय के कथरिहा वान बिरवा बाले ही कथरी को ओढ़ने दशाने में उपयोग करते हैं। शेष अन्य बान बिरवा वाले कोल समुदाय में कथरी का उपयोग नहीं होता। यदि कोई कथरी का उपयोग करे तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है।
- घर के देवताओं की पूजा को देखना कन्याओं को वर्जित है। उनकी मान्यता है कि पुजाई में शामिल होने पर वह देवता विवाह के बाद उस पुत्री के ससुराल चला जाता है और वहाँ पुजवा लेता है।
- जिनके यहाँ देवी को बरिहा (भूरा कद्दू) चढ़ाया जाता है, वह परिवार अपने घर के बाड़े में बरिहा नहीं उगाता, न ही उसकी बरी डालता है। अस्तु, उसे किसी की बारी से भूरे कद्दू को चुराकर लाना पड़ता है। यही परम्परा कोलों उपजाति मवासी में भी पाई जाती है।
- दीपावली से देव अनुष्ठानी एकादशी तक कोलों में मंत्र जगाया जाता है। इस बीच कोई मंत्र सीखे तो उसे सिखा भी देते हैं।
- पहले जड़ी-बूटियों को अभिमंत्रित किया जाता है। फिर अकेले खोदकर लाया जाता है।
- साँप और कुत्ते के विष उतारने वाली दवा को गुनिया आधी रात्रि में जाकर नग्न होकर खोदता है।
- पेड़ चढ़ने के पहले उसका चरण छुआ जाता है।
- समूचे कोलान की रक्षा के लिए मंत्र पढ़कर कांस की छाहुर बाँधी जाती है। कहीं-कहीं भुयार समूचे गाँव की रक्षा के लिए भी गाँव छेंकने का यह कार्य करता हैं।

पारम्परिक ज्ञान

कोल ऐसा समुदाय है जिसे जंगल-पहाड़ से लेकर खेत-खलिहान तक का व्यापक और विशद ज्ञान है। यह अनुभव जनित ज्ञान अब विलुप्तता की स्थिति में है, अस्तु उसे संग्रहीत करना आवश्यक है।

- कोल समुदाय की महिलाओं में ऐसी मान्यता है कि यदि जंगल में विचरण करते समय महिलाएँ सिर पर घूँघट डाले रहें तो बाघ उन पर आक्रमण नहीं करता। प्राचीन समय में जब जंगल में हर जगह बाघ हुआ करते थे तो साथ-साथ रहने वाले पुरुषों के ऊपर उसने भले ही हमला किया हो, परन्तु सिर ढँकी महिलाओं के ऊपर कभी हमला नहीं करता।
- खेत की रखवाली कर रहा यदि कोई व्यक्ति अपने घोपा (छतुरा) में पड़ा हो तो बाघ-तेंदुए उसके ऊपर हमला नहीं करते।
- जंगल के रास्ते में जाते समय यदि बोलते-बतियाते हुए राह चला जाय तो बाघ उनके पास नहीं आता, वह आवाज सुनते ही दूर चला जाता है।
- कोलों की मान्यता है कि जंगल के रास्ते के पास यदि तेंदुआ हो तो वह दूर न जाकर मनुष्य से बचने के लिए पास ही जमीन में दुबक जाता है। तब राह चलने वालों को चाहिए कि उसकी ओर न देंखे और सीधे निकल जायें तो वह कोई हानि न पहुँचाएगा। किन्तु मनुष्य ने अगर उसकी ओर देखने की चेष्टा की तो वह आत्म रक्षार्थ तुरन्त उसके ऊपर हमला कर देता है।
- खेत-खलिहानों में जाते समय अगर चिड़िया कर्कश स्वर में बोल रही हों तो इसका अर्थ है कि वहाँ साँप होगा।
- जाड़े के दिनों में खेत के मेड़ों में साँप अक्सर धूप लेते रहते हैं। इसलिए क्वार से अगहन तक सावधानी पूर्वक वहाँ से निकलना चाहिए।
- जंगल के सभी जानवर मनुष्य से डरते हैं, किन्तु भालू मुकाबला करने सामने आ जाता है। उससे सावधान रहना चाहिए।
- बकरी के चरवाहे को भालू की चिंता नहीं रहती, क्योंकि बकरी को देखकर वह भाग जाता है।
- नर के बजाय बच्चे वाली मादा भालू बहुत खूँखार होती है। वह बच्चों के रक्षार्थ तुरन्त मनुष्य के ऊपर हमला बोल देती है।
- बाघ पहले जानवर का खून पीता है, फिर वहीं किसी झाड़ी में आराम करता है और उसके बाद भर पेट माँस खाकर चला जाता है। जब तक वह झाड़ी में आराम करता है, तब तक चील्ह-कौए तक मृत पशु के पास नहीं जाते। इसलिए तब तक मरे पड़े पशु के पास मनुष्य को भी नहीं जाना चाहिए, नहीं तो बाघ आक्रमण कर देता है।
- टिटहरी यदि रात में बोल रही हो तो उसका अर्थ है कि कोई हिंसक पशु आ रहा है।
- टिटहरी नाले के बीच में अंडे रख दे तो उसका अर्थ है कि उसके बच्चे उड़ने तक नाले से बहने लायक बारिश नहीं होगी।

- बया चिड़िया यदि पेड़ की टहनी में घने पत्तों के नीचे घोसला बनाए तो तेज और अगर किनारे की ओर बनाए तो कम बारिश होने का संकेत है।
- बेर में पत्ती आ जाए तो शीघ्र ही मानसूनी मनुष्य होने का संकेत है।
- यदि कुल्लू के पेड़ में घड़े के मोहड़ा ढँकने लायक पत्ते आ जायें तो शीघ्र बारिश के संकेत हैं।
- यदि थूहर का पत्ता बकरी के कान के बराबर हो जाये तो शीघ्र बारिश के संकेत हैं।
- आषाढ़ में बिल्ली यदि 4 बच्चे दे तो सम्पूर्ण चौमासा, 3 बच्चे दे तो तीन माह और 2 बच्चा दे तो दो माह ही बारिश होने के संकेत हैं।
- कोल समुदाय में मुखिया महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कोई बाहरी व्यक्ति अगर कोलान में प्रवेश करता है तो वह सर्वप्रथम मुखिया के घर ही जाता है। देवी-देवताओं के पूजा-पाठ एवं विवाह सम्बन्ध आदि उसी के द्वारा तय किए जाते हैं। उसे अपनी जाति बिरादरी की दूर-दूर तक की समस्त जानकारी रहती है।
- कोल समुदाय में देवी-देवता, झाड़-फूँक आदि की जिम्मेदारी भुयार पर रहती है।
- पुराने बरूआ के बूढ़ा हो जाने पर नया बरूआ बनाया जाता है जो देवालय में रखी सांग को अपने गाल में छेदता है।
- नया बरूआ जब आँख में पट्टी बाँध पान के रखे गए पाँच बीड़ा में से अपने देवी का बीड़ा उठा लेता है, तब वह पक्का बरूआ माना जाता है।
- कोल समुदाय टोने-टोटके पर पूर्णत: विश्वास करता है, इसलिए खेत में फसल को रोगों से बचाने के लिए बैल के सिर की हड्डी को लकड़ी में फँसाकर टाँगता है।
- उसके खेत की फसल में किसी की दीठ न लगे, अस्तु घड़े को खड़िया मिट्टी से रंगकर एक लकड़ी में फँसाकर उसे डिठोरा (बजूका) के रूप में खेत में गाड़ता है।
- यदि जंगल जाते समय या शिकार अभियान के समय कोई छींक दे तो वह यात्रा स्थगित कर देता है।
- जंगल जाते समय उसके कंधे पर कुल्हाड़ी अवश्य रहती है। उसकी मान्यता है कि लोहा हाथ में रखने पर कोई भूत-प्रेत नजदीक नहीं आता।
- कोलों की मान्यता है कि नींबू पास में रखने से भूत-प्रेत समीप नहीं आते।

मूठ की मान्यता

कोल जनजाति में एक ओर जहाँ इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी का बहुत सारा मौलिक ज्ञान था, वहीं कुछ अंध विश्वास से भी इंकार नहीं किया जा सकता। जब देश में आज जैसा रोगों का निदान उपलब्ध नहीं था, तब कैंसर, निमोनिया, मलेरिया और पीलिया जैसी बीमारियों को जादू-टोना एवं मूठ से जोड़ दिया जाता था। यह अवधारणा कोल भर ही नहीं, उनकी उपजाति भुमिया, मवासी सभी में समान रूप से पाई जाती थी।

यदि किसी परिवार की किसी अन्य परिवार से खुन्नस हो जाती और उस खुन्नस के बाद महीने दो महीने में उस परिवार का कोई बीमार हो जाता तो विरोधी परिवार की किसी महिला को लांछित करते देर न लगती कि इस महिला ने अपने मायके वालों से टोना मूठ करवाया है। फिर जब वह परिवार किसी गुनिया के यहाँ दिखाने-सुनाने जाता तो वह उसकी और पुष्टि कर देता एवं पूजा-पाठ की सामग्री तथा मुर्गे-बकरे की माँग करता। वह ऋण आदि लेकर झाड़-फूँक कराता, अगर वह गुनिया मूठ को अपने मंत्र शक्ति से वापस लौटाना चाहता तो उसमें तपौना के लिए एक बोतल दारू लगती और एक उल्टा पंख वाला मुर्गा भी। यह उल्टे पंख के मुर्गे की अलग प्रजाति होती है जो दुर्लभ मानी जाती है। कोलों की मान्यता थी कि उसकी बलि देने से मूठ की 'मारण शक्ति' वापस चली जाती है।

कोल समुदाय में पुनर्जन्म की या परलोक बाद के जीवन की अवधारणा नहीं है, पर वह यह अवश्य मानता है कि उसके कुछ परिजन मरने के बाद भूत बनकर सताने लगते हैं। अस्तु उनका चौरा बनाकर पूज लेते हैं।

जातीय पंचायतें

कोल समुदाय रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, शहडोल एवं कटनी जिले तथा विंध्य से जुड़े उत्तरप्रदेश वाले भू-भाग में बसने वाले अन्य जनजातियों में से यहाँ का बहुसंख्यक समुदाय था, इसलिए प्राचीन समय में इस समुदाय में तीन तरह की पंचायतें हुआ करती थी।

- चौरासी गाँव की पंचायत
- परगना पंचायत
- स्थानीय पंचायत।

चौरासी गाँव की पंचायत

यह चौरासी गाँव की पंचायत क्यों कहलाई? क्या कोल राजाओं के समय से ही यह चली आ रही है या बाद में बनी? इस बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। हो सकता है, प्राचीन समय के किसी कोल राजा के राज्य में चौरासी गाँव ही रहे हों, जिसकी समूचे राज्य की एक पंचायत बनी हो और वही परम्परा चली आ रही हो। किन्तु कुछ लोगों के कथनानुसार यह नाम शायद इसलिए रखा गया होगा कि प्राचीन समय में जब किसी राजा का राज्य शुरू-शुरू में स्थापित होता था और बाद में भाइयों का आपसी बँटवारा होता था तो राजा के मझले भाई को राव कहा जाता था और उसे हिस्से में 84 गाँव मिलते थे। इस तरह कोल समुदाय ने उसके समूचे प्रशासित 84 गाँव की एक पंचायत बनायी होगी जो कालांतर में 84 गाँव की पंचायत कहलाई। बाद में उसी के आधार पर सम्भवत: हर राज्य की उनकी बड़ी सामाजिक पंचायत को भी चौरासी गाँव की पंचायत ही कहा जाने लगा होगा।

परगना पंचायत

रियासती जमाने में जब राज्य प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए समूचे राज्य को 40-50 ग्रामों के अलग-अलग सर्किल या प्रखंड में बाँटकर प्रशासन चलाया जाता था तो वह क्षेत्र 'परगना' कहलाता था। इस तरह सुविधा की दृष्टि से कोलों ने भी अपनी एक जातीय पंचायत को उसी स्तर पर गठित कर लिया होगा जो परगना पंचायत कहलाती रही होगी, क्योंकि राजकाज के काम से लोग अक्सर परगना मुख्यालय में जाते थे, अस्तु वहाँ सभी से भेंट में आसानी रहती रही होगी।

स्थानीय पंचायत

यह आसपास के दो-चार गाँव के उनकी बिरादरी की छोटी सभा होती थी जो आपसी झगड़े एवं विधवा महिलाओं के रख लेने या पुरुषों के घर बैठा चले जाने जैसे साधारण प्रकरण निपटाती थी।

इस तरह यह समस्त कोल समुदाय की तीन स्तरीय पंचायतें होती थीं जो तत्कालीन समाजिक झगड़ों को पटाने के लिए अधिकृत हुआ करती थीं। इन जातीय पंचायतों की समाज में अपराध रोकने की बहुत बड़ी भूमिका भी हुआ करती थी। जिनको मुखिया-देमान चुना जाता, वह भी सद्चरित्र और ईमानदार होते ताकि उनके ऊपर सबका विश्वास कायम रहे। पर इनका अस्त्र एक ही था- वह था सामाजिक बहिष्कार। इन पंचायतों में जो प्रकरण होते थे, वे प्राय: इस प्रकार होते थे।

सामाजिक अपराध से सम्बन्धित

अक्सर देखा जाता था कि उन दिनों बेहतर चिकित्सा के अभाव में हैजा, चेचक आदि संक्रामक बीमारियाँ अक्सर आती थीं। निमोनिया, तिजारी, चौथिया आदि का भी प्रकोप होता था और उनसे हर वर्ष बहुत से लोग मर जाते जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों होते थे। ऐसी किसी स्थिति में यदि बड़ा भाई गुजर गया और उस घर में छोटा भाई या कुटुंब का कोई छोटा भाई अविवाहित होता तो घर-परिवार के बड़े-बूढ़े लोग यह कहकर उस विधवा बहू को देवर की पत्नी बना देते थे कि 'यह घर की इज्जत है तो घर में ही रहे, बाहर क्यों जाय?' ऐसे स्थिति में किसी जाति दण्ड का प्रावधान नहीं होता था। वह दोनों दो-चार माह परिवार से अलग रहते, फिर समूचे कुटुंब के लोग बैठकर उसे समाज में मिलाने के लिए राजी हो एक दिन की पंगत के साथ उसे जाति में शामिल कर लेते। जाति बिरादरी में मिलने की इस परम्परा या रस्म को सतना में रोटी-भाजी होना कहा जाता था, पर रीवा एवं सीधी में इसे कोदई भाजी भी कहते थे।

इसी तरह किसी विधुर द्वारा अन्य स्थानों से लाई गई विधवा के रखने पर भी एक दिन की रोटी-भाजी में सब कुछ सुलझ जाता था। किन्तु कठिन होता था अपनी पत्नी होते हुए भी किसी अन्य की पत्नी को रख लेना या परजाति की स्त्री को भगाकर लाना और अपनी पत्नी बनाकर रख लेना। ऐसी स्थिति में उसे 8-10 वर्ष तक सामाजिक बहिष्कार का दण्ड भोगना पड़ता था, क्योंकि उसके साथ हुक्का-चिलम, चूँन-तम्बाकू सबकुछ बन्द हो जाता था। इस बीच यदि कोई उसके साथ हुक्का-चिलम पीले तो वह भी समाज से बहिष्कृत माना जाता था। उसे भी समाज में मिलने के लिए दण्ड देना पड़ता था।

अगर जाति की स्त्री वाला प्रकरण हुआ तब तो कुछ वर्षों तक बहिष्कृत रहने के बाद परगना पंचायत उसके अनुनय विनय पर एक-दो दिन के रोटी-भाजी या कुछ दारू पिलाने का दण्ड लेकर उसे समाज में मिला लेती थी। किन्तु परजाति वाले प्रकरण को तब सुलझाते थे, जब उनके 8-10 वर्ष के बालक-बालिका हो जाने पर उनके विवाह की समस्या आती। क्योंकि पितृ सत्तात्मक समाज होने के कारण उनका विवाह कहीं अन्य जाति में तो हो नहीं सकता था, ऐसी स्थिति में यह दलील दी जाती कि 'स्त्री भले परजाति की थी, पर यह बालक-बालिका आदि तो अपने ही समाज के खून हैं। इसलिए इन बेचारों का भला क्या कुसूर? अत: इनके माता-पिता की प्रार्थना पर सहानुभति पूर्वक विचार करते हुए अब उन्हें समाज में मिला लेना उचित है।' फिर 84 गाँव के प्रमुखों के सामने वह हाथ जोड़कर गलती की माफी माँगकर जाति में शामिल करने की औपचारिक प्रार्थना करता एवं इसके पश्चात् एक या दो दिन की रोटी-भाजी व कुछ आर्थिक दण्ड लेकर उसे मिला लिया जाता। लेकिन दूसरे व्यक्ति की पत्नी भगाकर लाने में सामाजिक दण्ड के साथ उसे पूर्व पति को विवाह का खर्च भी देना पड़ता था जो 'वियाहुत' कहा जाता है।

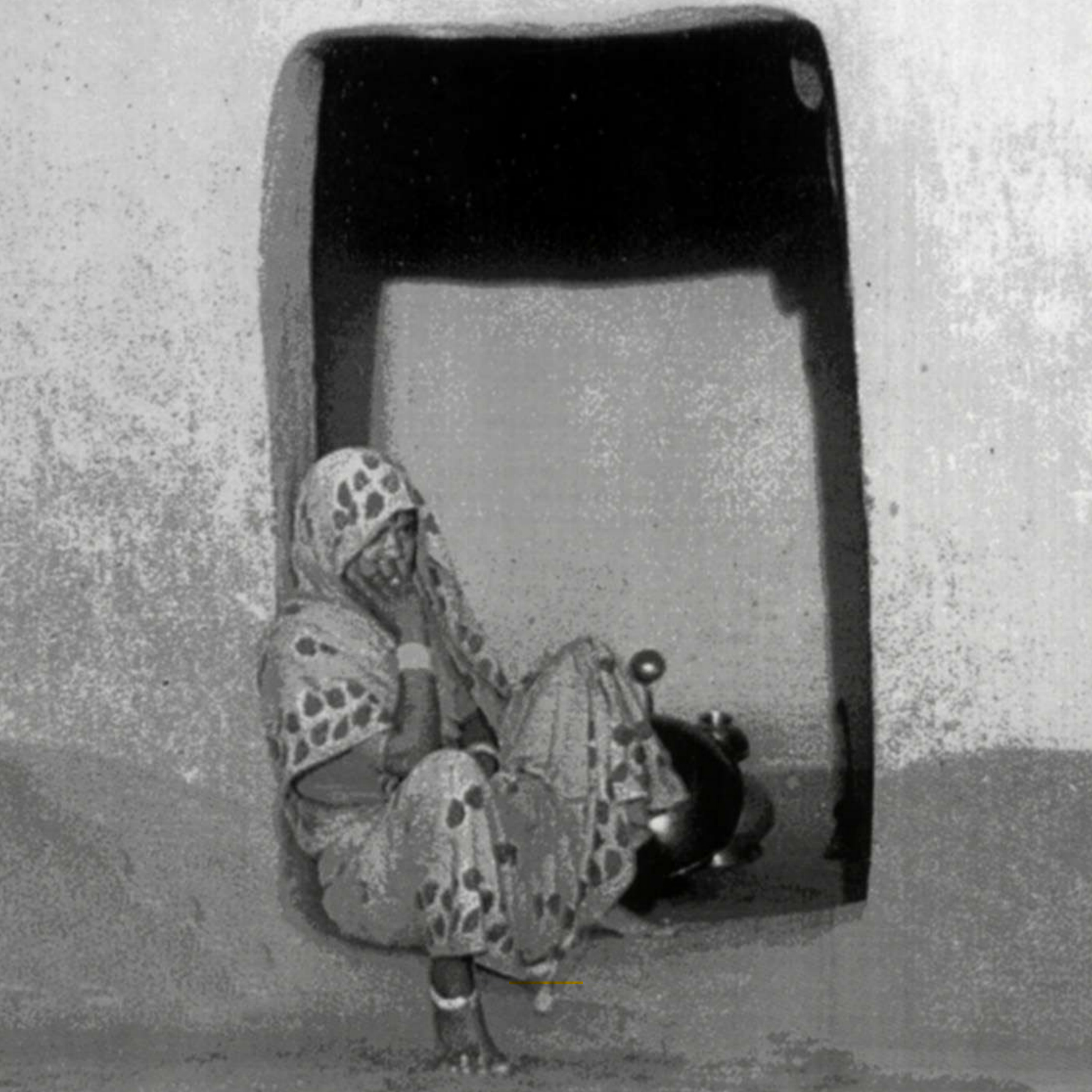

घर बैठा प्रथा

कोल समुदाय में विधवा या विधुर सम्बन्धों की एक और परम्परा थी। वह थी- घर बैठा प्रथा। इसमें यदि कोई विधवा स्त्री होती और उसके नाबालिग बच्चे होते तो उनके और अपने परिवरिश के लिए वह अपने ननदोई, दूर रिश्ते के ननदोई या जाति बिरादरी के व्यक्ति को घरबैठा रख लेती। घर बैठा बनने वाले पति अक्सर अधेड़ उम्र के होते थे। अस्तु यदि कोई घरबैठा बनने वाला व्यक्ति होता तो अपनी पुरानी घर-गृहस्थी अपनी पहले वाली पत्नी के बालकों या छोटे भाइयों को सौंप उस महिला के गृहस्थी में आ जाता एवं उस घर एवं बच्चों की परिवरिश करने लगता, पर उन दोनों की बाद कि जो संतान होतीं उनको उस माँ के पुराने वाले पति के घर, जमीन और सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था।

घरबैठा यदि कोई नई सम्पत्ति घर-द्वार-खेत आदि बना लेता तो उस सम्पत्ति में उसके इन बेटों का अवश्य पूरा अधिकार होता था। पर उसे भी जाति बिरादरी में मिलने के लिए रोटी-भाजी की रस्म पूरी करनी पड़ती थी।

इस तरह कोल समुदाय में प्राचीन समय में जातीय पंचायतें काफी मजबूत होती थी जो पेंचीदे से पेंचीदे जातीय प्रकरणों को निपटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। उन पंचायतों के प्रमुख मुखिया, देमान या महतो के पंचायत का निर्णय सर्वमान्य होता था। किन्तु जातीय पंचायतें तो आज भी हैं और उनके स्थानीय जाति सम्बन्धित विवादों को निपटाती भी हैं लेकिन अब न तो उतने मजबूत जातीय बन्धन बचे हैं, न ही शक्तिशाली जातीय पंचायतें।

जड़ी बूटियों का ज्ञान एवं उपयोग

यूँ तो कोल समाज में प्राचीन समय में समस्त रोग बीमारियों को किसी न किसी देवी देवता का प्रकोप ही माना जाता था और सबसे पहले किसी गुनिया के दिए हुए भभूत को खिलाकर व हाथ में बीड़ा बाँधकर ही उपचार होता था, साथ ही एक परम्परा मंत्र पढ़ते हुए काँस की सीक से झाड़ फूँक करने की भी विधि थी जिसे 'हाथ-देना' कहा जाता था, किन्तु उसके बाबजूद भी कुछ जड़ी-बूटियों से उपचार भी होते थे जो इस प्रकार थे -

बुखार	-	पचगुड्डू के कोमल फल को भूनकर नमक की डली के साथ दो-तीन दिन खाने से बुखार अच्छा हो जाता है।
जूड़ी बुखार	-	नारी दमदमी का काढ़ा पीने और उसे हाथ में बाँधने से बुखार अच्छा हो जाता है।
अतरी बुखार	-	हुरहुर के ढाई पत्ते हाथ में बाँध लेने से बुखार समाप्त हो जाता है।
बच्चों का सर्दी जुकाम	-	सांभर की सींग को घोट कर हींग के साथ कुनकुना छाती में लेपन करने से सर्दी जुकाम रोग ठीक हो जाता है।
बच्चों का जूड़ा निमोनिया	-	सफेद घुंची की एक चौथाई दाल को भून और पीस कर माँ के आंचल के दूध के साथ पिलाने से जूड़ा अच्छा हो जाता है।
कुल्हाड़ी का घाव	-	कोल समुदाय के लोग अक्सर कुल्हाड़ी से लकड़ी काटते थे, जिससे कभी-कभी हाथ पैर में चोट भी लग जाती थी। ऐसी चोट में 'गुंजा' नामक पौधे के रस को लगा देने से घाव सूख जाता है।
फोड़ा फुंसी	-	साल 'सलई' के छाल को पीस कर लगाने से फोड़ा सूख जाता है।
आधा सिर दर्द	-	दमना 'धमिना' के पत्ते का रस या गेंदा के पत्ते का रस सिर में लेपनकर देने से सिर दर्द अच्छा हो जाता है।
सर्दी जुकाम	-	पुराना गुड़, सोंठ, काली मिर्च, हल्दी, इन चारों को पीसकर दूध के साथ पकाकर कुनकुना पीने से लेने पर सर्दी जुकाम अच्छी हो जाती है।
दाद-खाज	-	चिल्ले की पत्ती को बाँटकर दाद-खाज में लगाने से वे जड़ से चले जाते हैं।
प्रसव में देरी	-	यदि गर्भवती महिलाओं के प्रसव में देरी हो तो चिरचिरा की जड़ कमर में बाँध देने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।
अधिक बच्चे पैदा न हों	-	इसके लिए तेंदू की गोंद कारगर थी, जिसे खिला देने से बच्चे पैदा होना बंद हो जाते हैं।

इस तरह बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ आज भी कारगर हैं, पर एलोपैथी चिकित्सा सुगम होने से अब नई पीढ़ी इसे पूरी तरह भूलती जा रही है। कोल और भुमिया समुदाय कुछ मंत्र पूरित दवाइयाँ गले में या हाथ में बाँधकर भी कुछ रोगों का उपचार करते हैं- पीलिया रोग, अतरी बुखार, अचौथिया बुखार और जानवरों के घाव में कीड़े लगना।

वाचिक परम्परा

कोल समुदाय कई तरह के गीत गाता है। कुछ उनकी दादर तो कुछ अन्य मौखिक परम्परा के गीत। महिलाएँ भी दादर के साथ अन्य तरह के गीत गाती हैं, जिन्हें निम्नवत विभाजित किया जा सकता है-

जातीय गीत, पर्व गीत, श्रम गीत, संस्कार गीत एवं अन्य गीत

कोलों के गीत भले ही अन्य समुदाय से मिलते जुलते हों और लम्बे समय से साथ-साथ रहते कुछ उन्हीं से कोल समुदाय में आये भी हों, किन्तु इसके बाबजूद भी उनकी वाचिक परम्परा बहुत समृद्ध है, क्योंकि जो समुदाय नागरीय क्षेत्र से जितनी दूर होता है, उसका मौखिक साहित्य उतना ही समृद्ध हुआ करता है। इस वाचिक परम्परा के गीतों के अलावा भी कहावतें, पहेलियाँ, लोक कथाएँ आदि भी हैं।

जातीय गीत

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए दिन भर चाहे जो काम करता रहा हो, पर शाम के समय एक साथ बैठकर एक-दूसरे के सुख-दु:ख को बाँटना, गान-गम्मत आदि मनोरंजन करना उसके स्वभाव में है। जहाँ तक जातीय गीत की बात है तो वह अनेक मेहनतकश समुदाय में पाए जाते हैं, जिनके गाने बजाने की शैली से नाम भी बदल जाते हैं। कुछ में उनके जातीय कर्म भी मुखर हो उठते हैं।

इस तरह तेली, कुम्हार, धोबी, गड़रिये, यादव आदि के गीतों को जहाँ बिरहा गीत कहा जाता है, वहीं कोल समुदाय, बारी, चर्मकार आदि कुछ जातियों के जातीय गीतों को दादर। वैसे देखा जाय तो गाँव की अनेक मेहनतकश जातियों के जातीय गीत पाए जाते हैं, पर लोहार, बढ़ई एवं कुशवाहा इसके अपवाद हैं जिनके अपने कोई जातीय गीत नहीं हैं। वह शायद इसलिए होगा कि उनका काम इतनी मेहनत का था कि दिन भर लौह पीटने, लकड़ी अहारने या कुएँ की ढेकली से पानी खींचने के कारण इतने थक जाते थे कि भोजन के पश्चात् मनोरंजन नहीं, बल्कि खाट ही दिखती थी। किन्तु कोल ऐसा समुदाय है जो दिन भर तो मेहनत करता, पर रात्रि में प्राय: रोज ही गम्मत में बैठ आधी-आधी रात्रि तक बजाता गाता है और साथ ही महिलाएँ भी नृत्य करती हैं, लेकिन सुबह फिर सभी अपने-अपने काम पर।

ये जातीय गीत एक या दो पंक्तियों के अनुशासन में बँधे रहते हैं परन्तु बहुत ही सरल, सरस और हृदय को स्पर्श करने वाले होते हैं जिनकी रसाभिव्यक्ति आसानी से सभी के समझ में आ जाती है। इन्हें गाने के पहले एक दोहा जैसा गीत पढ़ते थे, जिसे दोहरी कहा जाता है, उसके बाद फिर गीत शुरू होता है।

कोलों के कुछ दादर गीत एवं साथ में उनका हिंदी अनुवाद -

मैं शारद का सुमिरव शारद मता हमार।
या शारद का सुमिरे भूले अखर जुड़िजाय॥
आपन सुरति मोरे बाह म गोदाय दे,
देखव रहउ में तोही साझ अउ सकारे।

- अपनी सूरत को तुम किसी गुदना गोदने वाले से मेरी भुजा में गुदवा दो, जिससे मैं तुम्हें सुबह-शाम देखता रहूँ।

आमा कय ढोलकी बोकरिया कइ खाल रे।
कोल का बेटउना बजाबय बड़ी ताल रे॥

- यह ढोलक आम की लकड़ी की बनी है, जिसमें बकरी की खाल मढ़ी हुई है। परन्तु इसमें इतनी अच्छी धुन निकालने वाला तो कोई कोल का बेटा ही है।

तुम डोंड़ा बना हम लउची बनी।
बगिया मा गमकी दूनउ जनी॥

- तुम डोंड़ा बन जाओ और मैं इलायची, फिर किसी बाग में हम साथ-साथ ही अपनी सुगन्ध बिखेरें।

अगना म बइठे चारो भईया।
अगना मोर भरा भरा लागय॥

- आज मेरे आँगन में चारों भाई साथ-साथ ही बैठे हैं, जिससे मेरा आँगन भरा भरा-सा दिख रहा है।

रेड़ा कय पाटी धतूरे कय साल।
सगमन का माचा बनाया हमार॥

- यह ऐसा माचा है जिसमें अरण्डी की पाटी और धतूरे की साल लगी हुई है, पर वह सागौन की लकड़ी से बना है।

नाचय न आई, मन मारय क आय गय।

- ऐसा लगता है कि तुम नृत्य करने नहीं, बल्कि दिल लुभाने आई थी।

बाजा नहि बाजय त, दिल नहीं हुमसय।

- ठीक से बाजा नहीं बजता तो मेरा दिल भी आनंदित नहीं होता।

भुइ गड़बा होइ जाय, मटरुआ टारो टरय ना।

- बजाते समय जमीन में गड्ढा भले हो जाय, पर मटरुआ यहाँ से उठकर जाने वाला नहीं है।

साजा मिले दिलदार नए नए।

- मेरे समधी तो नए मिले हैं, पर बड़े ही दिलदार हैं।

अचरा म लिखी है रमायन,
बिछउना म श्याम बिहारी।

- मेरे आँचल में समूची रामायण और बिछौना में घनश्याम लिखे हुए हैं।

पटियन क पार पार बेर बेर अउत्या,
सगळे लडकउनन का बौड़म बनउत्या।

- तुम बार-बार पाटी पार-पार कर हम युवाओं को मूर्ख बनाने आ रही हो।

नीक के न गइहा न नीक के बजइहा,
नई गोंदली का सड़ाका पइहा।

- अगर इस गम्मत में ठीक से नहीं बजाओ-गाओगे तो नई गोंदली के सड़ाके खाने पड़ेंगे। (यह शायद नए गाने बजाने वालों को सयानों की नसीहत है)

सुधि करा बुद्धि करा मन मा बिचार करा,
गली म भईतय जउन बतियाँ उय याद करा।

- जो हमारी तुम्हारी रास्ते में बातें हुई थीं, उन्हें स्मरण करो और उन पर विचार करो।

हमसे न किहा तीन तेरा,
हमार कोतबाली म डेरा।

- हमसे ऐसी-वैसी बातें मत करना, क्योंकि हमारा घर कोतवाली के पास ही है।

लगाये रह्या रगड़ा, दमना पाबय।

- काम में लगे रहना जिससे उसे एक घण्टे का भी समय न मिले।

एक सेर दाढ़ी सबाव सेर मेंछा,
पियय य तमाखू सुलगाये चोगी बाबा।

- इस बाबा की सेर भर की दाढ़ी और सबा सेर की मूछें हैं, फिर भी यह आग को नहीं डरता। हर समय चोगी सुलगाकर तम्बाकू पीता रहता है।

देख ल्या झोरी अउ देख ल्या हाथ रे,
काहे करी चोरी हम मोरे महराज रे।

- हमारे हाथ और झोली को टटोल लो। महराज जी, भला हम चोरी जैसा गलत काम क्यों करें?

कुलमा न कोऊ सयाना,
सबय रन जूझन चले गे।

- परिवार में अब एक भी सयाने व्यक्ति नहीं बचे, क्योंकि सभी रणक्षेत्र में युद्ध करने चले गए हैं। (सम्भवत: यह कोलकटी या त्यौंथर के युद्ध से सम्बंधित दादर है, जिसमें बहुत सारे कोल एक साथ युद्ध में मारे गए थे।)

छोटी से बड़ी होइबय, धिरज धरा बलमा।

- यद्यपि अभी अवस्था में भले ही कम हैं, पर बलम एक दो वर्ष अभी धैर्य धर लो। हम छोटी से बड़ी हो जायेंगी।

ज्ञानी त ज्ञान चाहय, आँधर क लाठी।
पानी पाताल चाहय, पाथर क टाकी॥

- ज्ञानी की इच्छा हमेशा और अधिक ज्ञान पाने की होती है एवं अंधे को लाठी की। इसी तरह पानी हमेशा पाताल की ओर बढ़ता है एवं पत्थर को गढ़ कर सुघड़ बनाने के लिए टांकी की जरूरत पड़ती है।

कइसे धरउ मन धीर रे,
बलम परदेशय निकर गे।

- मैं अब मन में किस प्रकार धीर धरुँ, क्योंकि मेरे पति परदेश चले गए हैं।

फूटा उय ताल बधामय,
कुँवर दोऊ मइहर के राजा।

- मैहर के दोनों राजकुमार कितने अच्छे हैं, जिन्होंने फूटे पड़े तलाब को बँधा दिया ?

मिलन कइसय होय,
मोर दूरी क रहना।

- मेरी भेंट अब कैसे होगी क्योंकि, मैं दूर देश का रहने वाला हूँ।

लइले लोटा डोर,
मोसे कुँवना म मिल ले।

- तू लोटा डोर ले ले और पानी पीने के बहाने मुझसे कुआँ पर मिलने आजा।

धन होरी म जाय,
छैला बरबरी क चाही।

- धन होली में जाये, मैं धन को महत्त्व नहीं देती, पर मेरा प्रेमी मेरे जैसा हो।

चली गली गली जाव,
छैला हिठाई से चीन्हगा।

- मैं तो रास्ता चल रही थी, पर मेरा प्रेमी मुझे मेरी चाल से ही पहचान गया।

बढ़के मारउ हाथ,
या बूंदा बाली बचय ना।

- मैं बढ़कर हाथ मारूँगा और इस बूंदा वाली को ले जाऊँगा।

घुंघटा बइरी मोर,
कइसे के मारव नजरिया।

- मेरा दुश्मन तो यह घूँघट ही बना हुआ है, जो भर नजर देखने ही नहीं देता।

गोरी चढ़ गय पहार,
हाथे उरमाल गुंडा साथ मा।

- लो गोरी तो हाथ में रूमाल लेकर पहाड़ चढ़ गई, पर साथ में कुछ गुण्डे भी हैं।

मोसे नहीं बनय रे,
डुड़हा का कोलउना य पइडे परा।

- क्या बताऊँ मुझसे नाचते गाते नहीं बनता, पर यह डुड़हा गाँव का कोल छोकरा पीछे पड़ा हुआ है।

हमका बनाए जोगनिया,
हमार जोगिया होइगे राजा।

- मुझे जोगनी बनाकर मेरे पति जोगी हो गए।

पिया निकरे परदेश,
लड़का लोगइया सब छाड़ के।

- मेरे पति अपनी पत्नी और बच्चे छोड़ परदेश चले गए।

मोरे दुबरा कय बेर,
राजा आबा सुआ बन के खाय जा।

- मेरे द्वार की बेर पकने लगी हैं। हे साजन! आप तोता बनकर आओ और उसे खा जाओ।

ददरे म रास न भास,
बलम उसनीधन मर गे।

- आज की दादर की गम्मत में कोई दम नहीं है, पर व्यर्थ ही मेरे पति सोने से भी वंचित रह गए।

मोर पिया जोताथे ब्याज बारे।

- मेरे पिया ने सिर्फ ब्याज पटाने में जीवन बिता दिया। मूलधन ज्यों का त्यों बना है।

चलिहौ तोरे साथ,
पिया मइरे म परखे।

- मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, तुम खेत में इंतजार करना।

श्रमिक गीत: टिप्पा

टिप्पा श्रम की दुरूहता को हल्का करने वाला गीत है जिसे कहीं भी काम करते समय या धान का रोपा लगाते समय अधिकतर युवक-युवतियाँ ही इसे गाते हैं। यूँ तो दो पंक्तियों के अनुशासन में बँधा यह श्रमिक गीत श्रम की दुरूहता को हल्का बनाने के लिए ही गाया जाता है किन्तु इसकी प्रभावशीलता हिंदी के दोहे या मुक्तक से राई रत्ती भी कम नहीं होती।

बेर बेर बरजेव कि यारी न लगाव,
तोर तिरछी नजरियाँ चिन्हारी न लगाव।
- मैंने तुझे बार-बार कहा था कि मुझसे दोस्ती और परिचय न कर, क्योंकि तेरी नजरें टेढ़ी हैं।

पाना के खाए रचत नहि आय,
काहे बिगड़ी है गोरी हसत नहि आय।
- पान खाने से मुँह नहीं रच रहा! आज गोरी क्यों नाराज है, जो हँस नहीं रही?

लाली गुलाबी पियर वाली,
पटपरिया म ठाड़ी हमार बाली।
- लाल गुलाबी और पीले रंग के वस्त्र पहनकर मेरी प्रेमिका पथरीली भूमि में खड़ी है।

गोरी गोरी बहिया गोदए गोदना,
तोरे गोदना म रीझा बरेदी समना।
- गोरी गोरी बाँह में ऐसा गुदना गोदा रखा है जिसे देखकर चरवाहा समना खुश हो गया है।

लाली क देखे ललच मरिहे,
लाला दूरी से गाए तरस मरिहे।
- अरे! तू लाल कपड़ों वाली को देख कर ललचा जायेगा, अस्तु दूर से ही गीत गाना, वर्ना तरसता रह जायेगा।

पाँच के जाघा पचास लग जाय,
मय तो तोही न छोड़िहों पुलिस लग जाय।
- पाँच रुपये के स्थान पर पचास भले लग जाय, पर मैं तुझे छोड़ने वाला नहीं हूँ, भले ही पुलिस का पहरा लगा हो।

अमली क डंडा घुमाय मरिहों,
दोनों भाइन क जोड़ा छोडाय के मनिहों।
- मैं इमली के डण्डे को घुमाकर मारूँगी और तुम दोनों भइयों की जोड़ी को अलग करके ही दम लूँगी।

अमली क पत्ता बड़ा खट्टा,
गोरी चढ़ गय कचेहली लगाय छत्ता॥
- इमली का पत्ता खट्टा होता है, पर गोरी तो छाता लगाकर कचेहरी चली गई?

कखरी म लड़का बगल सूपा,
कोऊ पीसय क देहा बलम भूखा।

- मेरे हाथ के बगल में अनाज से भरा सूपा और गोदी में बालक है। कोई पीसने के लिए अपनी चक्की दे दो क्योंकि मेरा पति भूखा है।

कांधा कय साफी भुइंन धर दे,
मोही लइले कधइयाँ हलुक लागउ रे।

- कन्धे की साफी को जमीन पर रखकर मुझे कन्धे पर बिठा ले, मैं हल्का हूँ।

गयउ तय बजरिया लयायव सकला,
तोरे दीदी से बतइहउ उकेली बोकला।

- मैं बाजार गया था तो वहाँ से शकरकन्द ले आया हूँ, पर अगर तेरी माँ से तेरी करतूत बताऊँगा तो वह पीठ उधेड़ लेगी।

गयउ तय बजरियय लयायउ मसुरी।
छैला काहे दुहराने देखाय पशुरी।

- मैं बाजार गया था तो वहाँ से मसूर ले आया हूँ, पर तू इतना दुबला क्यों हो गया है कि तेरी पसली दिख रही हैं!

राम लिहे धनुहा लखन लीन्हें बान,
गढ़ लंका म जूझे सिरी भगमान।

- राम तो धनुष लिए हुए हैं और लक्ष्मण के हाथ में बाण हैं जो अभी लंका गढ़ से युद्ध करके लौटे हैं।

गाड़ी तो आई गोलाई दइके,
छैला बाबू बोलाबय, मिठाई लइके।

- गाड़ी तो गोला चक्कर देकर आ रही है, पर छैला बाबू मुझे मिठाई दिखाकर बुला रहा है।

पानी तो बरखय पहरियन मा,
बूदा लइगय मछरियाँ दहरियन मा।

- पानी तो पहाड़ में बरस रहा है, पर मछली पानी का बुन्दा नदी के कुंड में ले जा रही है।

गाड़ी क हिंडल मूडत नहि आय,
डरेबरबा हरामी सुनत नहि आय।

- गाड़ी का हैण्डिल नहीं मुड़ रहा, पर ड्राइवर को बता रहा हूँ तो वह सुन ही नहीं रहा!

नदिया तो आई बहाए कछरा,
दयमंती जो होती ओढ़उती अचरा।

- नदी तो पूरा कछार को डुबोते हुए बह रही है, पर अगर तुममें जरा भी मानवता होती तो बरस रहे पानी में अपना धोती का पल्लू अवश्य ओढ़ाकर मुझे भीगने से बचाती!

नदिया किनारे गड़ा है भाला,
बेला रानी के लाने लगा है ताला।

- नदिया के किनारे भाला गड़ा हुआ है, पर बेलारानी घर न जाय अस्तु ताला लगा हुआ है।

करिया तो कुत्ता गरे म कबरा।
तोही नदिया बोलायउ गई तय कछरा ।

- काले कुत्ते के गले में सफेदी है। मैंने तुझे नदी पर आने को कहा था, पर तुम तो तालाब चली गई!

काटा कटिल्ला रुधाए खिरकी,
अतरी होइ के आजा न कोऊ पकड़ी।

- खिड़की में तो काँटे की बाड़ लगी है, पर तू सकरी गली वाले रास्ते आजा, वहाँ तुझे कोई नहीं रोकेगा।

महुआ कय कूची हईं छूछी,
तोरी उतरी जमानी कोऊ न पूछी।

- महुआ गिर चुकने के बाद उसकी कूँच खाली खाली दिखने लगती है। यदि तुम्हारी जवानी उतर जायेगी तो फिर तुम्हें भी कोई नहीं पूछेगा।

मूड़े कय लकड़ी भुइन धर दे,
मोही लइले कधइया दया कर दे।

- सिर की गठरी जमीन पर रख दे और अपने कन्धे पर बैठाकर मुझ थकी हुई पर दया कर।

नदिया तो आई बहाए लये जाय।
बइया धोतियां सम्हारे छोड़ाए लये जाय।

- नदी इस तरह आई है कि सब कुछ बहा जा रहा है। तू अपनी धोती सम्हालना, कहीं वह भी न बह जाय!

उअतय जोधइया तो बूड़य चली,
मोरे संघय बताबा कि को-को चली।

- चन्द्रमा उगकर डूबने लगा। अब यह तो बताओ कि मेरे साथ कौन-कौन चलेगा?

लम्मा है बीरा लउग दोहरी,
ठाड़ी रहे तय रजनिया गइल के मोहरी।

- इस लम्बे पान के बीड़े में दो लौंग लगी हुई हैं। रास्ता सँकरा है अस्तु तुम किनारे पर खड़े रहकर इंतजार कर लेना।

रीमा कय बिटिया मइहरहा जमान,
जिया होइगा मिलनमा गबइया जनान।

- गाने वाली लड़की रीवा की है और जवाब देने वाला मैहर का। पर उसका जवाब सुनकर यही लगा कि अच्छा गाने वाला है।

नदिया तो आई बहए कछरा,
रोटी लइजा बरेदिया लगाय रसरा।

- नदी अपने कछार को डुबोते हुए बह रही है। चरवाहे तू रस्सी बाँधकर आ और रोटी ले जा।

पानी तो बरसय तोहरी कइती,
रंग बरसय गुलाबी हमारी कइती।

- पानी तुम्हारी ओर बरस रहा है, पर हमारे यहाँ तो रंग की बारिश हो रही है।

ऊँची टिकुरिया म लगी है बजार,
बइया फुलिया बराय लेतै नकुआ के तार।

- ऊँचे टीले पर बाजार लगी हुई है। तुम अपने नाक के हिसाब से बेसर चुन लो।

छुइला क पत्ता पतउआ त आय,
बइया नागा न माने हसउआ त आय।

- पलास का पत्ता आखिर पत्ता ही है। तुम बुरा मत मानना, मैं हँसी-मजाक ही कर रहा हूँ।

गयउ तय बजरिया लयायउ मिसरी,
तोर उधना कय बतिया कबउ न बिसरी।

- मैं बाजार गया था तो वहाँ से मिसरी ले आया हूँ। पर तुम्हारी उस दिन की बातें अभी तक नहीं भूली।

चाँदी क छल्ला धरा है अरबा,
तोही नदिया बोलायउ गईं तय तलबा।

- चाँदी की अँगूठी आले में रखी है। मैंने तुझे नदिया पर आने को कहा, पर तुम तालाब चली गई।

छूला क पत्ता झिझिरिया देखाय,
बइया काहे दुबरानी पशुरिया देखाय।

- पलास के पत्ते में छेद दिख रहे हैं। तुम इतनी दुबली हो गई हो कि तुम्हारी पसली दिख रही है।

गोरु चराए सकल नहि आय,
आज दिन भर से होइगे बोलत नहीं आय।

- बेचारा जानवरों को चराते-चराते इतना थक गया है कि आज किसी से बोल ही नहीं रहा!

अमली के पेड़े पटक तरूआ,
तोही अइसय बदा है जलम रडुआ।

- तुम तो इमली के पेड़ पर सिर पटक लो, क्योंकि तुम्हें सारी जिन्दगी कुँवारा ही रहना है।

जियरा त सूघर हई बोचरी,
तय तो भग हेंन से दूरी स्वहाती नहीं।

- तुम भले देखने में सुन्दर हो, पर बातचीत करते नहीं आती। यहाँ से चली जाओ, तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं।

लठ्ठा कय धोती किनारी नहि आय,
बिना बोले बताने चिन्हारी नहि आय।

- लठ्ठा की धोती में किनारी नहीं होती, इसी तरह बगैर बोलने बताने से चिन्हारी नहीं होती।

लाली लाली बंडी म महुली गुदाम।
तोर तिरछी नजरिया तो लीन्हे परान।

- तुम्हारी लाल रंग की बंडी में हल्की बादामी रंग की बटन लगी हैं और तिरछी नजरें तो जैसे प्राण ही ले लेंगी!

हम नहीं गाई कहू क जोर के,
कउनउ छैला न गाबय हमू क जोर के।

- हम तो किसी को (नाम) जोड़कर नहीं गाती, पर कोई गाने वाला हमें भी अपने गीत में जोड़कर मत गाए।

अम्मा के खाले दसी खटिया,
सुख स्वाबय कुमारी लगाए तकिया।

- आम के पेड़ के नीचे खाट बिछी है, जहाँ एक लड़की सिर के नीचे तकिया रखकर सो रही है।

मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं कहावतें

कहावतें-लोकोक्तियाँ अनुभव जनित ज्ञान का मुकम्मल दस्तावेज हैं, जो किसी समुदाय के आदिम संस्कृति की संवाहक भी होती हैं। हम यहाँ कोल समुदाय द्वारा प्रतिदिन के जीवन में उपयोग होने वाले कुछ मुहावरे, लोकोक्तियाँ कहावतें दे रहे हैं। इन्हें बघेली में उक्खान या कहनूत भी कहा जाता है। यह कहीं तो शिक्षाप्रद हैं, पर कहीं-कहीं मन की भड़ास निकालने वाली भी होती हैं। जब इनका व्यंजना से अर्थ निकाला जाता है तो उन अपढ़ अनाम व्यक्तियों की उक्ति सहज ही प्राणाम्य हो जाती है जिन्होंने इनकी रचना की होगी।

मोर सिखाई लोखरी, मोहिन से लोखर फंद खेलय?

- जिससे सीखना उसी से साजिश षडयंत्र करने लगना।

आंजी न सहय फूटी सहय।

- पहले से सचेत न होना।

आने क लड़िका कुइयाँ म गिरा,
कहिन कुछू डुभ उतर गा।

- दूसरे के नुकसान को महत्त्व न देना।

मेंहरिया के धोतियां नहीं,
बिलिया के गतिया बाँधय।

- वस्तुस्थिति की सही समझ का अभाव।

गाडर का जानय पइरा खाय?

- हर चीज को हर व्यक्ति नहीं जानता।

दार भात म मूसर चन्द।

- अनावश्य हस्तक्षेप।

मोरे आगू मोर कस,
तोरे आगू तोर कस।

- अवसरवादी चरित्र।

मूड़े-मूड़े लाठी चलय,
कहय झगड़ कइसन होत है।

- वस्तुस्थिति को न समझ पाना।

खाय अहार, त पेलय पहार।

- जैसा भोजन, वैसा काम।

सरा मूड नउआ क दोख देय।

- चीज ही खराब हो तो उपयोग करने में का क्या दोष?

बारा रोटी हर चलय सोरा चलय कुदार

- भूखे (बिना भोजन के) काम नहीं होता।

सिखये पूत दरबार नहीं जाय।

- ज्ञान प्रकृति प्रदत्त होता है। किसी के द्वारा सिखाया नहीं जाता।

आन क लोखरो गइल बतामय,
अपनव कुकुरन से निछबामय।

- दूसरे को सीख देना, पर बाद में खुद धोखा खा जाना।

बासी भात म बेनमा नहीं चलय।

- अनावश्यक चीजों का महत्त्व नहीं होता।

गुड़ के साथ सिघारव कुट जाथय।

- संगत का फल तो बुरा होगा ही।

जेखर बदरिया ओहिन से नाचाथी।

- हर व्यक्ति हर काम नहीं कर सकता।

ओई ससुरे जाय ओई गुना गोठय।

- एक ही व्यक्ति के सिर पर सारा भार।

न बादर के रखबार।
न छेरी के तकबार।

- अव्यवस्था ही अव्यवस्था।

नरदा के न्याव म बखरी हार गे।

- थोड़ी लालच में सब कुछ गवाँ देना।

आन कय गाई आन कय बाछी,
जे हाकिंस वा पापी।

- अनावश्यक परेशानी।

मेहरी मनुष्य का झगड़ा को काटी न्याव।

- दो लोगों के बीच में पड़ना ठीक नहीं।

तोर तोर कस मोर बड़े दुखे का।

- अपने के सामने दूसरे को महत्त्व न देना।

चीलर के दुखन ओढ़ना नहि फेंके जाय।

- हर समस्या का कुछ निदान होता है।

जइसन कस घर दुवार तइसन कस फरका।
जइसन कस बाप महतारी तइसन कस लड़का॥

- परिवेश से अलग नहीं हो सकते।

न ठाकुर के अगिती, न घोड़ के पछीती।

- न तो ठाकुर के दरवाजे के सामने से निकलना चाहिए, न घोड़ा के पीछे से। क्योंकि ठाकुर बेगार के काम में पकड़ लेगा और घोड़ा के पीछे से जाने पर वह लात मार सकता है।

तीन जात मा बड़ी सुला ही, गाडर अहिर गड़रिया।
तीन जात मा काटानासी कूकुर घोड़ मेंहरिया॥

- तीन जाति के बहुत संगठित होते हैं। वे हैं- भेड़, यादव और गड़रिए, पर तीन जाति में हमेंशा ईर्ष्या ही रहती है। वे हैं- कुत्ता, घोड़ा और औरत।

सांझ क पानी सकारे क झगड़।

- शाम के समय यदि झगड़ा शुरू हो तो सारी रात्रि चलता है और अगर सुबह झगड़ा शुरू हुआ तो वह समस्त दिन चलता है।

आखी न टाखी, नव जोड़ी कजरउटा

- अनावश्यक खर्च।

गऊ कस सीध

- गाय की तरह सीधी सादी।

हँसिया कस टेढ़

- स्वभाव से कुटिल।

रेडी कस सिहिल सिहिल

- अरण्डी जैसी चिकनी।

बिलारी कस बच्चा लुकावत फिरब

- सुरक्षा का पूरा ध्यान।

अमचुर अस खाए।

-हमेशा नाराज दिखना।

कोल कय लकड़ी नहीं जून्हा बिकाथय

- गुणवत्ता युक्त काम।

गोड़ कय हूकी कोल कय नाही।

- अपनी अपनी बात पर अटल।

गाडर कस चाल।

- जहाँ भी जाना एक साथ जाना।

धन धरम दूनव चले जाब।

- सब कुछ बर्बाद हो जाना।

नगरिया बिना सेंके नहि बजय।

- बिना परिश्रम कोई कार्य नहीं होता।

ददरे म रास न भास,
बलम उसनीधन मरगे।

- अनावश्यक समय की बर्बादी।

कूकुर क नेउना नहि पचय।

- सभी को हर चीज हजम नहीं होती।

गोह परी गमार के पाले,
मारय अउ कढिलाबय।

- निर्दयी के हाथ पड़ जाना।

ललहा पाइस पनहीं,
जरबा खउदत जाय।

- अपनी उपलब्धि को कुछ अधिक ही प्रदर्शित करना।

खाई नीक कि माई?

- अधिक स्वार्थी बन जाना।

लहटी गाय गोलइदा खाय,
दउर दउर मउहारे जाय।

- आदत के बशीभूत।

बीछी केर मन्त्र न जानय,
साँप के बिला म हाथ डारय।

- अनुभव रहित उपक्रम।

मोर पेट हाहू।
मय न देहव काहू।

- सब कुछ हजम कर जाने की प्रवृत्ति।

नटबन खेती बहुरियन घर नहि चलय।

- अनुभवहीनता का काम ठीक नहीं होता।

देवी फिरय बिपत कय मारी,
पण्डा कहय मोही कला बताव।

- पहले अपनी बीती निपटाए, फिर दूसरे को देखे।

हर हार म जुआ पहार मा,
जोतइया क पता नहीं?

- अव्यवस्था ही अव्यवस्था।

पहेलियाँ

वाचिक परम्परा की एक विधा पहेली भी है जिसे अक्सर छोटे या किशोरवय के बालक बालिका एक-दूसरे से बूझते हैं। इन पहेलियों में इतनी भूल-भुलइया होती है कि अच्छों-अच्छों की अक्ल चकरा जाती है। पर उन अपढ़ अनाम व्यक्तियों की इन रचनाओं का जब उत्तर निकलता है तो उनके बुद्धि कौशल को प्रणाम करने का मन करता है। पर अब बच्चों में धीरे-धीरे पहेलियों की जानकारी समाप्त-सी होती जा रही है। रीवा और सीधी में इन्हें 'किहनी' कहा जाता है, पर सतना कटनी में यह 'जनउहल' नाम से जानी जाती हैं। यहाँ कुछ पहेलियाँ प्रस्तुत हैं-

आठ कुल्हारी नव तरवार ।
कटय न काटी कइमा कै डार॥

- भले ही आठ कुल्हाड़ी और नौ तलवार लेकर काटा जाय, पर वह कैमा पेड़ की मजबूत डाल नहीं कटती!

उत्तर - छहिरी (छाया)

अहारय गयव पहारय गयव।
झुलनी झुलाए गयव॥

- मैं खेत पहाड़ मैदान कहीं भी जाता हूँ, पर द्वार में एक झुलनी झुलाकर ही जाता हूँ।

उत्तर - ताला

दिन के भरी रात के छूछ।

- वह दिन भर भरी रहती है, पर रात्रि में खाली रहती है।

उत्तर - कपड़ों के टाँगने की अर्गसनी (अर्गला)

रात के भरी, दिन के छूछ।

- वह रात भर तो भरी रहती है, पर दिन में खाली।

उत्तर- पशुओं की सार

ऊपर दउरिया खाले दउरिया।
बीच म बइठी लाल बहरिया॥

- ऊपर नीचे दोनों ओर दौरी की तरह का आवरण है जिसके बीच में लाल बहरिया बैठी हुई है।

उत्तर - मसूर की दाल

अहारय गयव पहारय गयव।
लाल बीजा गाड़े गयव॥

- मैं हार पहाड़ कहीं भी जाता हूँ, लाल रंग का एक बीज गड़ा कर ही जाता हूँ।

उत्तर - आग

ऊपर चीकन तरे रोमार ।
तेही चाटय सब संसार॥

- उसका ऊपरी भाग चिकना है और अन्दर रोयें हैं, लेकिन उसे सारा संसार चाट रहा है।

उत्तर - आम

खटोली तरी भोला हेराय ग।

- वह खाट के नीचे ही गुम हो गया।

उत्तर- अधोवायु

एक चिरइया लेद्दी फेद्दी रात भर पिरबाई।
बड़े सकारे उची त झउआ भर बिन लाई॥

- एक चिड़िया गोल-मटोल है, जिसे सारी रात्रि प्रसव पीड़ा रही। सुबह महिलाएँ गई तो टोकरी में बीनकर आ गई?

उत्तर -महुआ का फूल

गाड़े कहय टांगे से,
झंनर मन्नर अउती हैं आज चलेंन कि काल्ह।

- गड़े हुए ने टंगे हुए से कहा कि खेत की मालकन झंनर मन्नर पैंजना बजाते आ रही है। पता नहीं आज या कल कब हमें तुम्हें तोड़ या उखाड़ कर बाजार भेज दे?

उत्तर - मूली/बैगन

अन्न खाय ना पानी पियय।
ठाढ़े मिरगा चू-चू करय॥

- यह मृगा न तो अन्न खाता, न ही पानी पीता है, पर दिन भर चीं-चीं बोलता रहता है।

उत्तर- किवाड़

टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी पहारय चली जाय।

- एक टेढ़ी-मेढ़ी सी लकड़ी है, जो पहाड़ तक चली जा रही है।

उत्तर - गली (रास्ता)

घर रहय त दुआर से निकर गा,
में कहा से जाव?

- मेरा घर द्वार से ही निकल कर भाग गया, अब मैं कहाँ जाऊँ?

उत्तर - मछली का जाल

एक लड़का कय नेरे ससुरार,
आबत जात देह खियाय?

- एक लड़के की ससुराल तो नजदीक है, पर आते-जाते शरीर घिसा जा रहा है।

उत्तर - धान दरने का चकरा

रुचि-रुचि बनी अउ घर घर नची।
जरय अब करम खटोली तरी परी।

- मैं किस प्रकार गोठ-गोठ कर बनाई गई थी और हर एक घर में आती जाती थी। पर अब कैसा तकदीर फूट गया है कि दिनभर खाट के नीचे पड़ी रहती हूँ?

उत्तर- टूटी पनहीं

झांपी रे झउआ,
का तोरे देश न नउआ ?

- झाँपी जैसे झल्ले बालो वाले भाई ! क्या तेरे देश में नाई नहीं होता?

उत्तर- रीछ

सेत है सुपेत है य देश म नहीं।
कर्रर कुर्रर खाय लेय बोकला नहीं।

- उसका रंग खूब सफेद है, पर वह हमारे इस लोक का नहीं है। आप उसे दाँत से काट-काट खा लीजिए, पर उसमें कोई आवरण नहीं है।

उत्तर- ओला

काली गाय कबूतर बछड़ा।
तिडिक गय नोई उचिक ग बछड़ा॥

- काली गाय के बछड़ा का रंग कबूतर की तरह है। पर जैसे ही नोई खुली, बछड़ा तिड़िक कर बाहर चला गया।

उत्तर- उड़द

टिकुरा मा खेती करय,
पानी मा खरिहान।

- उसकी खेती तो ऊँचे खेत में होती है, पर खलिहान पानी में बनाया जाता है।

उत्तर- अम्बारी

गाय बियान हड्डा, हड्डा बियान बच्छा।
जा पंडित से पूछ आव की का खाय वा बच्छा।

- गाय ने हड्डी को जना और हड्डी ने बछड़ा जना है, अब आप किसी विद्वान से ही पूछकर बताइए कि वह बच्चा क्या खाए?

उत्तर- मुर्गी का बच्चा

ऊँचे खेर गलगल बियान।
ओकर तेली बहुत मिठान॥

- ऊँचे भाग में गलगल ने बच्चे जने हैं, पर उसकी तेली बड़ी मीठी है।

उत्तर - मधुमक्खी

तुम छोटकी हम बड़का।
तुम मार दिहा हम रोय दिहन॥

- तुम छोटी हो, हम बड़े हैं। तुमने मार दिया और हम रोने लगे।

उत्तर - बिच्छू

देखत क लाल थथोलत क गुलगुल,
ओ दीदी चाबाथय।

- देखने में लाल किन्तु हाथ में टटोलने से कोमल है। ओ माँ! यह तो काटता है।

उत्तर- मिर्च

हेदा आई, होदा गय।

- इधर आई और उधर चली गई।

उत्तर- दृष्टि

अरिया मा लोलरिया नाचय।

- आले के अन्दर एक सुघड़ लड़की नाच रही है।

उत्तर - जीभ

वन से आबा वन बिलार।
आधा करिया आधा लाल॥

- वन से एक बिलाव आया हुआ है जो आधा तो काले रंग का है, पर उसका आधा शरीर लाल भी है।

उत्तर- घुंची

जोता है कोपराबा है।
लाल घोड़ा दउड़ाबा है॥

- खेत जोतकर पाटा चलाया हुआ है और उसमें लाल रंग का घोड़ा दौड़ रहा है।

उत्तर- माँग का सिन्दूर

भूजा बोकरा चढ़ा पहार।
ओखे नाक म एक ठे बार॥

- भूजा हुआ बकरा पहाड़ जा रहा है, किन्तु उसकी नाक में मात्र एक ही बाल है।

उत्तर- कुल्हाड़ी

सरा है घुना है पै लड़य क तयार है।

- वह सड़ घुन कर जीर्ण-शीर्ण हो गया है, पर लड़ने के लिए फिर भी तैयार है।

उत्तर- कांटा

ओखे कोठबा सुमर गुर्राय।

- उसके कोठे में सुअर गुर्रा रहा है!

उत्तर- कोनइता (चकरा)

एक लेय दुइ फेकय

- एक को हाथ में उठाए, पर फेंकते समय दो हो जाय।

उत्तर- मुखारी (दातून)

लख ओढ़े लख पहिरे, अउघट चली नहाय।
बीच गली मा मरगई, हांडी गीध न खाय॥

- वह लाख का आभूषण पहनकर दूर के गहरे घाट पर नहाने जा रही थी, पर बीच रास्ते में मर जाने के बाद उसे कौआ गिद्ध कोई नहीं खा रहे?

उत्तर- घड़ा जिसके टोके में लाख लगा दी जाती थी

ऊपर टेढ़ तरे घुचकुल,
आय परी पय जनिहे ना?

- ऊपर टेढ़ी है और बीच में गहरी। वह आ गई, पर तुम जानोगे नहीं।

उत्तर- तेली की तेल निकालने की परी

बीच टिकुरिया हर चलय थापक थइया होय।
मार के सोटा निकर गईं ता हा हा दइया होय॥

- खेत में हल चल रहा है जिसके चलने की आवाज आ रही है। तभी वह सोटा मारकर चली गई पर अब तो हा-हा दइया की आवाज आने लगी हैं।

उत्तर - बिच्छू

काला है कलूटा है, कारे बनमा रहता है।
लाल पानी पीता है।

- वह देखने में काला है और काले वन में उसका निवास है, लेकिन वह पानी लाल रंग का पीता है।

उत्तर - जूँ

जो मय जन त्यों तय।
रोजय आउत्यों मय॥
रोजय अउते तय।
तउ का करत्यों मय॥

- यदि मैं यह जानता कि यहाँ तू खड़ा है तो मैं प्रतिदिन इस खेत में आता? प्रतिदिन आता तो भला मैं क्या करता?

उत्तर - सुअर एवं बिजूके की बातचीत

एक चिरइया लेद्दी फेद्दी बोलाय मधुरी बानी।
खाए से गुरसाकर लागय पियय पेटभर पानी॥

- एक चिड़िया गोल लम्बी है जो बड़ी मधुर वाणी बोलती है। उसका स्वाद खट्टा-मीठा है, पर वह पेट भर पानी पीती है।

उत्तर-मठ्ठा निकालने की मथानी और तरछी

आव नेरे मोरे त डार देव तोरे।
अगर होत मोरे त का डरत्यों तोरे।

-एक केकड़े को सोने का हार मिल गया तो उसने सारस से कहा कि मेरे समीप आ तो यह हार तेरे गले में डाल दूँ। पर अगर मेरे गर्दन होती तो तुझे यह हार क्यों पहनाता?

आई होय त न अए,
न आई होय त आय जए।

-यदि आई हो तो मत आना, पर न आई हो तो आ जाना।

उत्तर- नदी

देत होय त न लयए,
न देत होय त लयए।

- यदि वह खेत को कोपर से सम कर रहा हो तो मत लाना, किन्तु अगर फुर्सत रखा हो तो ले आना।

उत्तर -ढेला फोड़ने का कोपर

फाग गीत

वाचिक परम्परा में कोल समुदाय का बहुत समृद्ध मौखिक साहित्य है। यही कारण है कि बारहों माह दादर गाने वाला यह समुदाय फागुन की बसंत पंचमी आते ही फगुआ गाने लगता है। क्षेत्रीयता के आधार पर फगुआ की कई ऐसी धुने या शैली होती हैं जो अलग-अलग क्षेत्रो में बदली हुई दिखती हैं। जैसे अगर कटनी उमरिया का कोल समाज फाग गाएगा तो वहाँ वह 'अरिये' से शुरुआत करेगा।

यथा -

अरिए मगर सागर के राजा हो गए,
पकड़ मछरियय खाय मगर सागर के राजा हो गए।

- तालाब का राजा मगर है जो मछलियों को पकड़-पकड़कर खाता है। (यदि सीधी रीवा के कोल इसे गाएँगे तो वहाँ नारदी या वैसबारी की धुन हो जाती है।)

यथा -

रीमा के राजा बघेला गुलाब सिह,
जयपुर म होरी खेलय।
अरे जयपुर म होरी खेलय गुलाब सिंह, जयपुर म होरी खेलय।

- रीवा के राजा महाराज गुलाबसिंह जयपुर में होली खेल रहे हैं। लेकिन वही फाग अगर सतना के कोल गाएँगे तो वह दुकडिय़ा होगी।

यथा -

छत्रपाल अलबेला हमरे छत्रपाल अलबेला।
वन मा लडय अकेला हमरे छत्रपाल अलबेला॥

- हमारे छत्रपाल ऐसे बहादुर योद्धा, जो अकेले ही रणक्षेत्र में लड़ रहे हैं।

राई गीत

इस तरह स्वभाव से उत्सवधर्मी कोल समुदाय कई तरह के फाग गीत आदि तो गाता ही है और अलग-अलग धुनों में बजाता है। कोलों का एक मौखिक गीत राई भी दो पंक्तियों के अनुशासन में बँधा रहता है। पर 'देखत के छोटे लगय घाव करय गम्भीर' की तरह इसकी मारक क्षमता गजब की होती है। राई अमूमन कटनी और सतना जिलो में गाई जाती है।

यथा-

मोरे खेरे कि खेर, मोरे खेरे कि खेर,
आज लाज राख दे सभा में।

- हे मेरे गाँव की खेर भवानी! आज मेरी इस गम्मत में तेरे मत्थे ही लाज है। मेरी लाज को तू ही बचा सकती है।

नई जरिया कय बेर, नई जरिया कय बेर।
पकय न पाबय कच्ची टोर ले॥

- बेर की नई झाड़ी में बेर फलकर गदरा गई है। लगता है, तुम उसे पकने न दोगे? कच्ची ही तोड़ कर खा लोगे।

सुआ बेर लए जाय, सुआ बेर लए जाय।
भउजी क मन ओही बेर मा॥

- तोता बेर लिए हुए उड़ता जा रहा है, पर भाभी का मन उसी बेर में ही है।

लोक कथाएँ

कोल समुदाय ऐसा समुदाय है जो दिन भर काम करता है, पर स्वभाव से उत्सव धर्मी होने के कारण उसका मौखिक साहित्य बहुत समृद्ध है। जाड़े के दिनों में जब अपेक्षाकृत रात अधिक बड़ी होती है, उस समय युवा वृद्ध सभी आग के अलाव में देर रात्रि तक बैठ कर बातें करते हैं। तब बड़े बुजुर्ग युवाओं को या तो अपने शिकार के अनुभव बताते हैं या फिर जंगल पहाड़ों, खेत-खलिहानों की, अन्य भोगे यथार्थ की बातें। कभी-कभी जब युवा उन्हें किस्सा सुनाने को कहते हैं तो किस्सा कहानी भी होती रहती है।

कुछ किस्से यहाँ प्रस्तुत हैं-

ढील मूठ डेगरु करय, रतन बीज ऊपरय परय।

अइसय-अइसय एक किसान रहय जेखे डेगरुआ नामक हरवाह हरवाही करबा करय। दसहरा क दिन रहय त डेगरुआ केर सार अपने बहिनी बहनोई के घरे आबा तय।

डेगरुआ कय घर बाली कहिस कि -तुम बखरी चले जा अउ किसानिन से दुइ पइला गोहूँ माँग लाबा त मय ओही पीस के स्वहारी बनाय के भाई क खबाय देव। गोही केर तेल घर म धरय है? व किसानिन से जाय के गोहू मागिस त व आँखी घुइर अस के कहिस -

ई ता आहीं रतन पमारे आन के घरे न जाय।
की तो खइहै पती घरय के, की ताये रहिजाय॥

तोर सार आबा है त का कहउ कर लपटेंट आय? जबा धरा है त लइजा अउ सोहारी बनाय के खबाय दे।

डेगरुआ बिगर गोहू लिहे घरे चलागा। व काम तो करत रहिगा पय मनमा गाँठ बंध गय। कुमार क महिना रहय औ जइसय कातिक लाग त किसानन के खेते म बोबाई शुरू होइ गय। एक दिना डेगरुआ के बखरिउ म गोहू बोमय कय तर तयारी शुरू भय। किसान खूब बिहन्नेन बीज अउ बरदा लइके चले गे। पय मलकिन क कहिगे कि डेगरुआ क कहि दिहा कि नारी लइके हरबी आय जई। जब डेगरुआ से किसानिन बताइस त, व यहय ताक म तो रहबै करय? व कहिस-

ई आहीं हरपती देउता, आन कांध ना जाँय।
की लइ जइहै पती टांग के, की ओढके रहिजाँय॥

डेगरुआ पइनारी उचाइस अउ चल दिहिस। व खेत पहुँचय कि ओखे पहिलेंन किसानिन खेत पहुच ओखे बिरुआने कय सगळी किसा दशा किसान क बताइस। किसान कातिक म बखेड़ा करय के बजाय घरय गे औ नारी क लयाय बोबाई शुरू कराय दिहिन। 15-20 दिना बाद जब खेतबा घूमय गे, त सब के खेत तो हरियाय आए रहय पय उनकर खेत झूरय परा रहय। उय घरय आय मलकिन के ऊपर खूब रिसिहांन कि तुम बीज क सुखबाए नहि रह्या त व कुठिला म भनसड गा अउ एकउ ठे नहि जमा। डेगरुआ हुअय बरदन क भूसा सानी डालत रहय। व कहिस -

ढील मूठ डेगरु करय।
रतन बीज ऊपर परय॥

किसान कहिन अच्छा त य सब तोर कारस्थानी आय? डेगरुआ केर हरबाही तो नियति आय त ओकर मड़इया य किसान के पट्टी से उठके दूसरे के पट्टी म बन गय। दुसरकबा किसान पहिल किसान केर सगला कर्जा चुकाय डेगरुआ के

नाव लिखि के अउठा लगबाय लिहिस। पय व मनय मन य से खुसी रहय कि अपने अपमान क बदला लइलिहे रहा।

भावार्थ- दरअसल यह कथा एक कोल युवक के इर्द-गिर्द बुनी गई है जिसका नाम डेगरुआ था। कथा के अनुसार डेगरुआ एक किसान के यहाँ हरवाही करता था और एक दिन उसका साला अपने बहन बहनोई से भेंट करने उनके गाँव आया हुआ था।

उसकी पत्नी ने डेगरुआ से कहा कि-महुआ की गोही का तेल तो घर में रखा ही है ? तुम किसान के यहाँ से जाकर दो पैला गेहूँ ले आओ तो मैं पीस लूँ और भाई को स्वहारी (पूड़ी) बनाकर खिला दूँ। यह तब का जमाना था, जब लोगों के भोजन में मोटे अनाज कोदो, कुटकी, सांवा, ज्वार, जौ आदि ही हुआ करते थे। गेहूँ उस समय दुर्लभ और तिथि-त्योहार में खाए जाने वाले अनाजों में था। डेगरुआ अपने किसान की बखरी में गया और दो पैला गेहूँ की माँग की। किसान तो घर में नहीं था, पर किसानिन ने हिकारत भरी दृष्टि से टका-सा जबाब देते हुए कहा कि -

'यह रतन पमरे हैं जो सब के घर नहीं जाते। या तो इसे हमारे पति और घर के लोग खाते हैं या फिर कुठले में बंद ही रहते हैं। तू ले जा और साले को उसी की पूड़ी खिला दे? तेरा साला आया है तो क्या कहीं का लपटेंट है?' डेगरुआ अपमान का घूँट पी घर लौट गया, पर किसान का काम करता रहा। उस समय क्वार का महीना था और एक माह बाद कार्तिक आ गया, जब लोग गेहूँ की बुबाई करने लगे। एक दिन डेगरुआ के बखरी में भी गेहूँ बोने की तैयारी चल रही थी। किसान बुबाई यंत्र नाड़ी को निकाल भीती में टिका खूब सुबह ही गेहूँ का बीज और बैलों को लेकर खेत चला गया एवं किसानिन से कह गया था कि,-

डेगरुआ नाड़ी लेकर आ जायेगा। पर डेगरुआ जब आया और किसानिन ने उसे नाड़ी ले जाने को कहा तो वह जबाब देता हुआ बोला कि,- ***'यह हरपती देवता हैं जो सबके काँधे पर चढ़ कर नहीं जाते। या तो इसे आपके पति ले जाय या फिर इसी तरह भीती में टिकाए रखे रहेंगे।'*** और अपनी बैल हाँकने की पैनारी (लाठी) लेकर खेत की ओर चल पड़ा। वह खेत पहुँचे कि उसके पहले ही किसानिन खेत जा कर किसान से सारी बात बता दी। बुबाई का दिन महत्त्वपूर्ण होता है, अस्तु समय की नजाकत समझ किसान घर गया और नाड़ी को लाकर बुबाई शुरू करा दी। पर 15-20 दिन बाद जब किसान खेत घूमने गया और खेतों की ओर देखा तो सबके खेत तो हरे भरे थे, पर उनका खेत यूँ ही खाली पड़ा था। उसमें एक पौधा भी नहीं उगा था। किसान ने घर आकर किसानिन से कहा कि, 'लगता है तुमने गेहूँ के बीज को ठीक से सुखाकर कुठले में नहीं भरा था? सारा बीज सड़ गया और एक दाना भी नहीं जमा।'

वहीं डेगरुआ भी बैलों को सानी-भूसा खिला रहा था। वह इसी मौके के तलाश में तो था ही और बोला -'डेगरुआ ने हलकी मूँठ ढीली रखी, अस्तु रतन बीज ऊपर ही रह गए। जमीन के नमी तक गए ही नहीं?' अब उसकी बात दोनों के समझ में आ गई थी कि उसने नाड़ी को जमीन में गहरे तक नहीं गड़ाया जिससे बीज ऊपर ही ऊपर पड़ता रहा और नमी में न पहुँच पाने के कारण एक दाना भी नहीं जमा। पर समय तो हाथ से निकल चुका था। डेगरुआ की झोपड़ी अब दूसरे किसान के पट्टी में बन गई थी, क्योंकि वह तो उसकी नियति थी। दूसरे किसान ने पहले किसान का कर्ज भी चुका दिया और डेगरुआ के नाम कर्ज बाँध अँगूठा लगवा लिया। पर डेगरुआ सन्तुष्ट था कि उसने अपने अपमान का बदला पूरा-पूरा चुका दिया है।

कथा स्रोत - श्री छोटा कोल, पिथौराबाद

मउसी तो न बहुरी ?

एक जंगल म बाघ तेंदुआ अउ मेंर मेंर के साउज रहबा करय। कहाथे कि पुराने जमाने म बाघ मनइन घाई शिकार क राध के खाबा करय पय एक बेर जंगल कय सगळी आगिन बुझाय गय। बाघ गुलबाघ क कहिस कि 'भाई तय चुप्पय मनई के बस्ती अउ होनसे आगी लइआउ।'

गुलबाघ जइसय गाँव के नगीच पहुँचा त कुकुरबा देख के हल पंग डार दिहिन जेसे मनई लाठी डंडा लइके निकर परे त गुलबाघ होंन से भाग लिहिस अउ बाघ से आपन असमर्थता बताइस।

बाघ कहिस कि 'तेंदुआ भाई तय जा। तोही कुकुरबे न देखे पइहय।' तेदुआ लुकत छिपत ग पय कुकुरा ओहू क देख डारिन अउ ओहू क बिना आगी लिहे लउटि आमय परा।

बाघ कहिस- 'या काम बिलारी मउसिन कर सका थी। घर के पछीती से अगने म जाय अउ अदहरा से आगी लइआबय?'

बिलारी जाय के पछीती से जइसय छानी म चढ़ी कि एकठे खासा मरसंग मुसबा मिलगा। जंगल के मुसबा तो छोट-छोट होथे पय व यतना मोट मुसबा पहिल बेर मिला तय कि एकय के खाए आधा पेट भर जाय। ओही खाय जब रसोई घर म गय त एक खोरबा म धरी खीर मिल गय। हई लेई व ओहू क खाइस। पय जइसय अदहरा म लगी आगी निकरय लाग त वमा चढ़ी ठेकइया दोहनी केर अधाउट दूध लुढक़ गा। हलेई यतनी नीक मीठ चीजय खाय पी के बिलारी केर मन डोल गा अउ व मनय मन कहिस कि 'बाघ राजा चाह कच्चा मास खाय चाह राध के पय मोरे बलाय से? मय अब गाँव कि इतनी मीठ-मीठ चीजय छोड़ के जंगल न जइहउ? 'कहा थे एक दुइ दिन तो बाघ या कहत परखे रहिगा कि 'मउसी तो न बहुरी?' पय फेर सोचिस कि मउसी क कुकुरबे मार डारिन होइहैं। या से फेर कच्चय मांस खाय लाग।

कथा स्रोत -श्री मिठुआ कोल अकही

भावार्थ - एक जंगल में बाघ तेंदुए आदि कई तरह के जानवर रहते थे। कहते हैं, प्राचीन समय में बाघ भी राँध कर ही माँस खाता था। पर एक दिन जंगल की आग ही बुझ गई। माँस कैसे पके? बाघ चिंतित था।

बाघ ने गुलबाघ को कहा कि- तुम रात्रि में मनुष्य की बस्ती में जाओ और वहाँ से चुपचाप आग उठाकर ले आओ ।

गुलबाघ गाँव गया, पर उसे देखकर कुत्ते भोंकने लगे, जिससे गाँव के लोग जाग गए और उसे वहाँ से उल्टे पाँव ही भागना पड़ा। बाघ ने तेंदुए से कहा कि- गुलबाघ बड़ा है तो कुत्ते उसे दूर से ही देख लेते हैं, पर तुम छोटे हो अस्तु दुबके-दुबके जाओ और आग उठा लाओ। तेंदुआ गया, पर वह भी आग लाने में सफल नहीं हुआ। क्योंकि कुत्तों के नजर से वह भी नहीं बच सका और जब कुत्ते जोर-जोर से भोंकने लगे तो उसे भी बाघ के सामने अपनी असमर्थता व्यक्त करनी पड़ी।

बाघ ने कहा -'तुम लोगों से यह काम न होगा। यह काम तो अब बिल्ली मौसी ही कर सकती है। मौसी तुम घर के पिछवाड़े से जाना, तुम्हें कोई न देख पाएगा, और आग ले आओ?'

बिल्ली घर के पिछवाड़े से गई एवं घर के छप्पर पर चढ़ गई। तभी उसे एक मोटा चूहा दिखा, जिसका सबसे पहले भोग लगाया। जंगल में छोटे-छोटे चूहें खाने वाली बिल्ली का एक चूहे में ही आधा पेट भर गया। रसोई घर में गई तो वहाँ एक कटोरे में खीर रखी थी, वह उसे खाकर बड़ी खुश हुई, क्योंकि जंगल में ऐसी मीठी चीज उसे कभी नहीं मिली थी। जब गोरसी के पास आग लेने लगी तो उसमें पक रहे दोहनी का दूध लुढ़क गया। पर उसका सोंधा-सोंधा दूध उसे और भी जायकेदार लगा। अब बिल्ली ने मन ही मन कहा कि -'बाघ राजा कच्चा माँस खाए, चाहे भूखों मरे मेरी बला से? पर मैं तो इतने मोटे चूहें, यह मीठी खीर और सोंधा-सोंधा अधावट दूध छोड़कर अब जंगल नहीं जाऊँगी। कहते हैं, तभी से बिल्ली गाँव में ही रहने लगी। बाघ एक दो दिन बिल्ली का इंतजार करता रहा कि मौसी तो न आई? पर बाद में सोचा कि उसे कुत्तों ने मार डाला होगा और वह कच्चा माँस ही खाने लगा।

मनई के चालाकीं से डरे

एक जंगल म एकठे बाघिन रहबा करय। जब व बुढाय के मउत के नगीचे पहुँच गय त अपने छउना क समझाय के कहिस कि- 'देख बेटा तय बाघ केर छउना आहे! त तोही कोहू से डरय कय जरूरत नहि आय। पय हमेशा मनई के चालाकी से बच के रहे।'

बाघिन मर गय अउ ओकर व छउना कुछू दिनन म खासा मरसंग बाघ होइगा। एक दिना व सिगटा से कहिस कि- 'सिगटा भाई मोही मनई केर चालाकी देखय क है। मनई कहा रहा थय?' सिगटा बताइस कि 'जउन य चार कोस लम्में बस्ती देखा थी हुअय मनई मिल जई।' बाघ जब बस्ती के नगीचे ग, त एक नाऊ परियारी लिहे मिल गा। बाघ कहिस 'तय मनई आहे ? हमी मनई केर चालाकी देखय क हबय।'

नाऊ डेर के कहिस- 'बाघ राजा मय मनई नहीं नाऊ आहू। अपना हियय बिराजी मोरे पीछे मनई आबत होई त ओकर चलाकी देख लेब।' बाघ हुअय बइठ गा।

कुछुदार म एकठे बढ़ई आबत देखांन। बाघ कहिस- 'तय मनई आहे? हमी मनई केर चालाकी देखय क है।' बढ़ई कहिस- 'मनई कय चालाकी सहजय देखय क थोरी मिलाथी? मय य बिरबा क अपने रोखना बसूला से कोले देथो फेर तुम वमा मूड डारा तब मनई कय चालाकी देखई।'

बढ़ई पेड़ क कोल के छेदा बनाय कहिस- 'यमा मूड डार के चालाकी देखा।' जइसय बाघ वमा मूड डारिस त बढ़ई एक ठे मेंख ठोक दिहिस। अब न बाघ क मूड आगे जाय न पीछे। बढ़ई तो चला गा। पय बाघ जेई निकरय सब से चरउरी करय कि भाई मोर जान बचाबा पय नगीचे कोऊ न आबय। साझ के बढ़ई पुनि लउटा अउ कहिस, 'देख लिहे मनई कय चलाकी।' बाघ कहिस- 'भाई मोर जान बचाव मोर महतारी ठीकय आय कहे रही है कि मनई के चलाकी से बचे।' बढ़ई जइसय व मेंख का उल्टा कइत से ठोकिस त मेंख निकर के बहिरे आय गय। पय बाघ मूड निकार य मेंर भगा कि फेर पीछे कइत नहि निहारिस।

कथा स्रोत - श्री भिम्मा कोल, उमरिया

भावार्थ - एक जंगल में एक बाघिन रहती थी। जब वह बूढ़ी और बीमार हुई तो अपने बच्चे से कहा कि- 'बेटा तुम बाघ के छौना हो इसलिए इस जंगल में और किसी को मत डरना ? मगर मनुष्य की चालाकी से हमेंशा बचकर रहना।' बाघिन यह सीख देकर मर गई। बाघ जब बड़ा हुआ तो अकेले विचरण करता और अनेक जानवरों का शिकार करता। मगर मनुष्य एक दिन उसे अपनी माँ की सीख याद आ गई। उसने सियार से पूछा कि- 'हमारी माँ कह रही थी कि तुम और किसी से मत डरना, मगर मनुष्य की चालाकी से डरना। तो मनुष्य कहाँ रहता है? मुझे उसकी चालाकी देखना है।'

सियार ने बताया कि यहाँ से चार कोस दूर जब जाएँगे तो मनुष्यों का गाँव मिल जायेगा। बाघ गाँव की ओर चला तो उसे एक नाई मिला। बाघ ने कहा 'तुम मनुष्य हो? मुझे मनुष्य की चालाकी देखना है।' नाई ने डरकर कहा 'मैं मनुष्य नहीं, मैं तो नाई हूँ। आप यहीं बैठिए मनुष्य भी मेरे पीछे आएगा।' कुछ देर में एक बढ़ई आया। बाघ ने उससे भी वही प्रश्न किया कि- 'क्या तुम मनुष्य हो? मुझे मनुष्य की चालाकी देखनी है।'

बढ़ई ने कहा 'मनुष्य की चालाकी ऐसे थोड़े देखने को मिलती है। कुछ देर रुको तो मैं इस पास वाले पेड़ में अपने रोखना बसूला से छेद किये देता हूँ। फिर जब उसमें अपना सिर डाल कर देखोगे, तब आदमी की चालाकी दिखेगी।'

जब उसने हामी भर ली तो बढ़ई ने पेड़ में आर-पार छेद बना उसे सिर डाल कर देखने को कहा। बाघ ने उसमें जैसे ही सिर डाला, बढ़ई ने उस छेद में एक लकड़ी की मेख डाल बसूले से ठोक दिया और कहा- 'लो अब दिन भर आदमी की चालाकी देखते रहना।' अब बाघ का सिर न तो आगे जाता, न पीछे। बाघ दिन भर चिल्लाता रहा, पर डर के मारे कोई उसके पास न आया। शाम के समय जब बढ़ई लौटा तो बोला कि 'अब तो मनुष्य की चालाकी देख चुके होगे?' बाघ विनती करने लगा कि, 'भैया मुझे बचाओ? मेरी माँ ठीक ही कह रही थी कि मनुष्य की चालाकी से डरना।'

बढ़ई ने मेख को उल्टी ओर से जैसे ही बसूले से ठोका तो वह अलग होकर जमीन पर गिर गई। पर बाघ सिर उठाकर ऐसा भागा कि फिर पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

जन्म-मृत्यु के संस्कार गीत

जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं कि कोल समुदाय की अधिक बसाहट मुख्यत: कटनी, उमरिया, सीधी, रीवा और सतना में है। बाकी पन्ना, शहडोल, जबलपुर के कुछ ही भागों में वह पाए जाते हैं। इसलिए 5-6 जिले के सीमित क्षेत्र में बसने और एक-दूसरे से जुड़े रहने के कारण इन सभी जिलों में निवासरत कोल समुदाय की लगभग एक जैसी जीवन शैली है। शायद यही कारण है कि जन्म से विवाह तक के संस्कार गीत भी हर जिले में प्राय: एक जैसे ही गाये जाते हैं।

मृत्यु के बाद गाया जाने वाला गीत अन्य जनजातियों में भले गाये जाते हों, किन्तु कोलों में ऐसा कोई भी संस्कार गीत इन जिलों में नहीं पाया जाता। हाँ, जैसे किसी लड़की का पिता गुजर गया या किसी का भाई गुजर गया तो उसके गुणों का बखान करते हुए अवश्य रुदन करने की परम्परा है। उदाहरण के लिए किसी लड़की का नाम यदि तिजिया है तो वह रोते हुए कहेगी कि, 'मोर बाप तो चला गा, अब मोहीं को तिजिया कहि के गोहराई ? उ हु हु हु हूं।' यानी - मेरा पिता तो गुजर गया, अब कौन मुझे तिजिया कह कर पुकारेगा?

अगर बहन होगी तो रोती हुई कहेगी कि, 'मोर भाई तो चला गा, अब को मोही राखी खजलइयां लेबाई ? उ हु हु हु हूँ।' आदि-आदि। अर्थात् - 'मेरा भाई तो गुजर गया अब कौन मुझे रक्षाबंधन कजलियों के त्यौहार में गाँव में बुलाएगा?'

इस तरह उसके क्रिया-कलापों का स्मरण कर रोते रहते हैं। कोल समुदाय जंगल और किसी कस्बे के मध्य में बसने एवं अक्सर किसानों के खेतों में मेहनत मजदूरी करने के कारण सदियों से अन्य समुदायों के काफी समीप रहा है। कहीं-कहीं तो कुछ परिवारों को बड़े भूमिपतियों ने अपने घरों के पास ही जमीन देकर बसाया हुआ था, अस्तु संस्कार गीतों में समानता होना स्वाभाविक है, क्योंकि अन्य जनजातियों के अपेक्षा कोल समुदाय गैर जनजातियों समुदायों के बीच सदियों से रहता चला आ रहा है। इसलिए यह बात स्वयं सिद्ध है कि तमाम संस्कार गीत अन्य समुदायों से ही उनमें आये होंगे। क्योंकि पति-पत्नी को साथ-साथ मेहनत मजदूरी करने और फिर घर में बच्चों का लालन-पालन, भड़वा बासन, चूल्हा-चौका भोजन तैयार करते तो उन्हें इतने लम्बे गीत रचने का समय ही कहाँ था? यूँ भी उनके जो सचमुच के जातीय गीत हैं, वह दो-तीन पंक्ति से अधिक नहीं होते। पर वाचिक परम्परा में गीत किसने रचा? इसका महत्त्व नहीं होता। महत्त्व इसका है कि वह किसके कंठ से मुखर हो रहा है?

स्वभाव से उत्सवधर्मी कोल महिलाएँ पुत्र जन्म और विवाहादि हर अवसर में गीत गाती हैं। कोल समुदाय में पुत्र होने पर छठी, बारहों आदि के बहुत अधिक तामझाम नहीं होते, क्योंकि रोज कमाने और रोज खाने वाले समुदाय में यह सम्भव भी नहीं है। किन्तु सोहर, कुआँ-पूजन का गीत उस रस्म के साथ अवश्य होता है।

इसी तरह विवाह में मागर माटी से लेकर बारात के विदा तक कन्या पक्ष में समस्त गीत होते हैं। पर वर पक्ष में मागर माटी, मंडप सहित अन्य संस्कार गीतों के साथ परछन, कोहबर के कुछ संस्कार गीत बढ़ जाते हैं तो द्वारचार, भमरी, बिदा आदि के गीत घट भी जाते हैं। कोल समुदाय में तिलक, बरीक्षा जैसे रस्म नहीं होते, बल्कि विवाह की बात दोनों पक्ष के स्वीकार के पश्चात् वर पक्ष ही कन्या के घर आकर उनके पुरोहित से लग्न लिखवाता है कि 'हम अमुक तिथि को आप के यहाँ बारात लेकर आएँगे।' और अपने घर लौटकर उसी लग्न पत्री के अनुसार खुद भी तैयारी करने में जुट जाता है।

विवाह संस्कार में एक-एक रस्म में कई-कई गीत गाए जाते हैं। अस्तु इन संस्कार गीतों को दो समूहों में बाँटा जा सकता है।

- कन्या पक्ष के विवाह गीत
- वर पक्ष के विवाह गीत

वर पक्ष के गीत

- लगन लिखाने जाते समय का गीत
- माटी मागर गीत
- मंडप गीत
- माय पूजा गीत
- बारात प्रस्थान गीत
- जिंदवा य बहलोल के समय के गीत
- परछन गीत
- कोहबर गीत

इसी तरह पुत्र जन्म के समय भी सोहर, कुआँ-पूजन जैसे संस्कार गीत गाए जाते हैं, जो इस प्रकार हैं-

- सोहर गीत
- छठी गीत
- कुआँ-पूजन गीत आदि

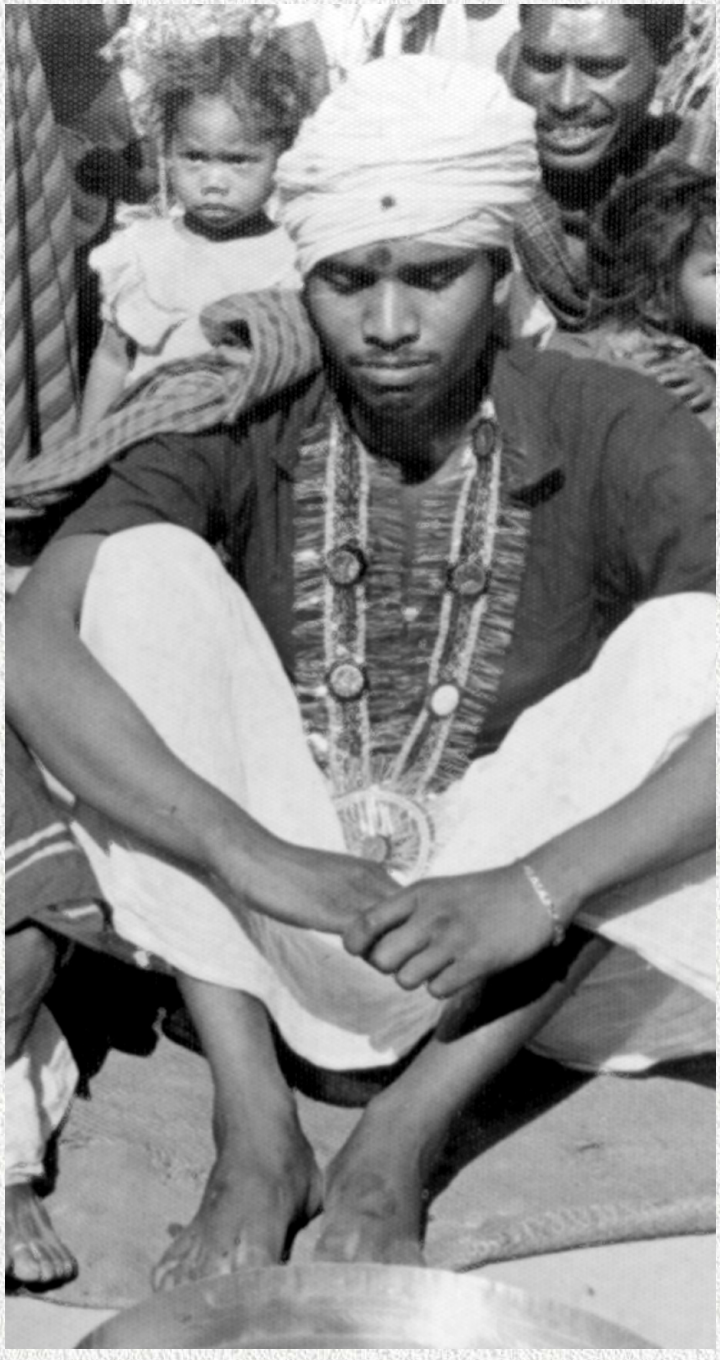

कन्या पक्ष के गीत

- विवाह की लग्न लिखाने आये वर पक्ष के सम्मान में गाई जाने वाली जेउनर गारी
- मागरमाटी का गीत
- मंडप गीत
- माय पूजा का गीत
- तेल चढ़ाने का गीत
- नहछू गीत
- बारात आने पर द्वारचार गीत
- जेउनर गारी
- पउड़ गीत
- भमरी गीत
- बिदाई गीत

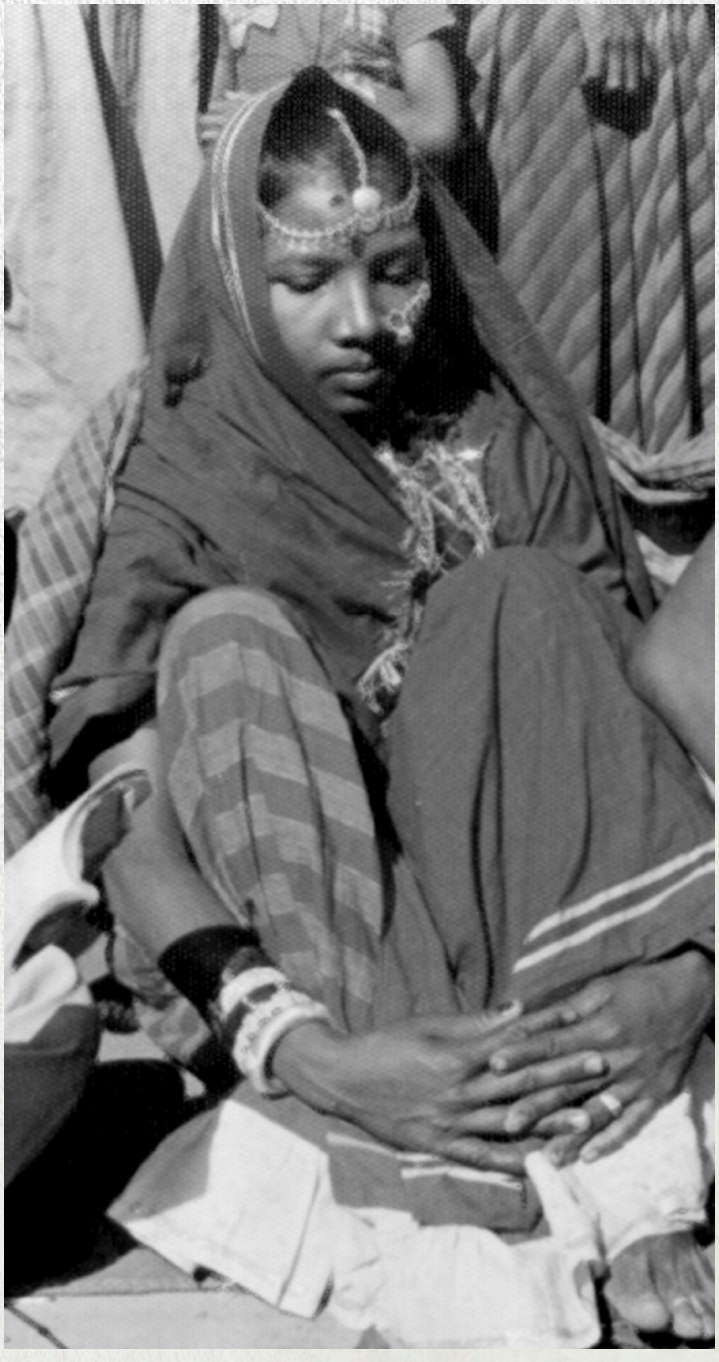

सोहर गीत

पहिल महीना जो लागा मथा मोर टनकइ हो,
आबा जो दुसरा महिनबा बदन मोर सिहरइ हो।
तिसरे महिनामा के लगतइ पाव मोर फड़कइ हो,
अब चउथ महिनामा के लगतइ अमिल साधि लागइ हो॥
सइयां पचवा छठमा महिनमा लगिगा मछरि चित लागइ हो,
सतमा महीना जो लगिगा त नइहर संदेस भेजा हो।
अठमा महीना जो लगिगा भिन्सारे जिउ अकुलय हो,
नउमा महीना जो लागा त थर थर परान कापइ हो॥

भावार्थ- पहला महीना जैसे ही लगा मेरे मस्तक में दर्द होने लगा। दूसरे महीने में बदन में सिहरन होने लगी और तीसरा महीना लगते ही पैर फड़कने लगे। चौथे महीने में खटाई खाने और पाँचवें छठवें महीने में मैं पति से मछली खाने की इच्छा व्यक्त करने लगी। इसी तरह सातवें महीने में कहने लगी कि मेरे मायके सन्देश भेज दो एवं आठवें में जी अकुलाने लगा। नवाँ महीना जो लगा तो मेरे प्राण ही थर-थर काँपने लगे।

कुआँ-पूजन गीत

कुआँ-पूजन में जिसके बालक या बालिका पैदा हुई होती है, वह एक घड़े को प्रतीक के रूप में लेकर कई महिलाओं के समूह में कुआँ के समीप जाती है और साथ की महिलाएँ गीत गाती हैं कि-

ऊपर बदर घहराय रे, नीचे धना पानी क निकरी।
जाय कहां मोरे बारे ससुर से,
अगने म कुइयां खनामय हो,
नीचे धना पानी क निकरी।

ऊपर मेघ गरज रहे हैं और नीचे बहू पानी भरने को गई है। कोई जाकर उनके भोले भाले ससुर से कहो कि आँगन में ही कुआँ बनवा दे।

इसी तरह गीत में क्रमश: जेठ और देवर के उल्लेख भी आते हैं। तब तक कुआँ के नजदीक पहुँच जाती हैं और गीत बदल जाता है कि-

जल भरव हिलोर, हिलोर रेशम की डोरी।
रेशम की डोरी तब निक लागय,
जब सोने घइलना होय, रेशम की डोरी॥
सोने घइलना तब निक लागय,
जब रूपे गोनरिया होय, रेशम की डोरी।
रूपे गोनरिया तब निक लागय,
जब कोरा बलकबा होय रेशम की डोरी॥
जल भरव हिलोर, हिलोर रेशम की डोरी॥

कुएँ में रेशम की डोर में बँधे घड़ा को हिलकोर कर पानी भर रही हूँ, पर रेशम की डोर तब अच्छी लगती है, जब घड़ा सोने का हो! लेकिन सोने का घड़ा भी तभी अच्छा लगेगा, जब उसके नीचे सिर में रखने की गोंनरी चाँदी की हो। किन्तु चाँदी की गोहरी तब अच्छी लगती है, जब गोद में एक बालक हो।

इस तरह पानी भरकर लाने और गीत गाते हुए घर आ जाता है, जहाँ देवर घड़ा उतारने की रस्म के इंतजार में खड़ा रहता है और गीत के बोल बदल जाते हैं कि-

लाल मोरी गघरी उतारा, हमारे गले मोहन माला।

देवर जी मेरे सिर पर रखा भरा हुआ घड़ा उतारने में मेरी मदद करो। मेरे गले में मोहन माला पड़ी हुई है, तुम्हें उपहार में दूँगी।

विवाह गीत

विवाह के पहले मागर माटी और माय की एक रस्म होती है जिसमें मिट्टी खोदकर लाई जाती है, क्योंकि उसी मिट्टी से बारात के लिए भोजन पकाने हेतु चूल्हे आदि बनाए जाते हैं। उसमें सभी जीवों को न्योता दिया जाता है। मागर माटी के गीत कुछ अश्लील से होते हैं कि अमुक बहू माटी खोदने गई और फिसल कर गिर गई आदि। उसके पश्चात् मंडप पड़ता है, उस समय यह गीत गाया जाता है-

मंडप गीत

धन धन भाग आँगनमा हो जहाँ मड़बा परत है।
कोल बेटउना तय मोर भइया,
अच्छे अच्छे बांस लगाए रे जहाँ मड़बा परत है।
बढ़ई बेटउना तय मोर भइया,
खम्हा नीक गड़ाए रे जहाँ मड़बा परत है।
कुम्हरा बेटउना तय मोर भइया,
भड़बा सुघर पहुचाए रे जहाँ मड़बा परत है।
धन धन भाग अगनमा हो जहाँ मड़बा परत है।

वह आँगन कितना भाग्यशाली है, जहाँ विवाह हेतु मंडप पड़ रहा है। कोल के बेटे तुम मेरे भाई हो इसलिए मंडप डालने के लिए अच्छे- अच्छे बाँस लेकर आना। बढ़ई के बेटे तुम मेरे भाई हो इसलिए बढ़िया मंगरोहन बनाकर लाना। कुम्हार के बेटे तुम मेरे भाई हो अस्तु विवाह में उपयोग हेतु अच्छे-अच्छे बर्तन लेकर आना। मंडप पड़ने के दूसरे दिन उसी के नीचे माय पूजा होती है, जिसमें सभी को आमंत्रित किया जाता है।

नेउता गीत

आंधी पानी नेउता ल्या, आज हमारे घर मइहर है।
खेर भमानी नेउता ल्या, आज हमारे घर मइहर है।
चींटी मटा सब नेउता ल्या, आज हमारे घर मइहर है।
बीछी कूछी नेउता ल्या, आज हमारे घर मइहर है।
देवी भमानी नेउता ल्या, आज हमारे घर मइहर है।

हे आंधी तूफान पानी! सभी मेरा निमंत्रण लेना क्योंकि हमारे यहाँ विवाह की माय पूजा है। हे बिच्छू-चीटी-मटा सभी जन्तु एवं खेर भवानी मेरा निमंत्रण स्वीकार करना क्योंकि मेरे यहाँ आज माय पूजा है।

इसी प्रकार बारात प्रस्थान पर प्रस्थान-गीत गाया जाता है, जिसे सोहाग गीत कहते हैं।

तेल चढ़ाने का गीत

तेलिया क तेल महग भ अउ बनिया के हरदी रे।
को तेलिया घर जाय अउ तेल लयावय हो।
दुलहा कय माई बड़ी सोहगइली
वा तेलिया घर जाय अउ तेल लयावय हो ।
तेलिया क तेल महग भ अउ बनिया कय हरदी हो।
को बनिया घर जाय अउ हरदी लयावय हो।
दुलहा कय माया है सोहगइली
वा बनिया घर जाय अउ हरदी लयावय हो।

तेली का तेल और बनिये की हल्दी महँगी हो गई है। तेली और बनिये के घर कौन जाए जो उबटन के लिए हल्दी तेल ले आये! दूल्हे की माँ ही मीठी-मीठी सुघर बातें करने वाली है, जो यह सब कर सकती है और तेली तथा बनिया के घर जाकर सभी वस्तुएँ ला सकती है।

कलेवा गीत

झूर कलेबा काहे खाते मोरे दुलरू, दूध दही लइलेते।
आपन दीदी अहिर घर भेज दूध दहिया लइ लेत्या।
आपन फूफू काछी के घर भेज भटा भाजी लइ लेत्या॥

सूखा कलेबा क्यों खा रहे3 हो दूल्हे जी! अपनी माँ को अहीर के घर भेज देते तो वहाँ दूध-दही मिल जाता। अपनी बुआ को यदि काछी के घर भेज देते तो वह सब्जी दे देता।
विवाह के समय कन्या मंडप के नीचे आती है तो एक गीत पउड़ बिछाने का होता है।

सोहाग गीत

लीले लीले घोड़बा कुमर असबरबा
कि लीली लीली घोड़ा कय लगाम,
राजा के सोहगबा।
एक वन नाके दुसर वन नाके,
तिसरे मलिन फुलवार,
राजा कय सोहगबा॥
कि तुम उतरा बारी कि बगइचा
कि तुम मलिन फुलवार,
राजा के सोहगबा।
ना हम उतरब बारी के बगइचा,
ना उतरब फुलवार, राजा के सोहगबा।
हम तो उतरब उहैं के मड़ए
जिन घर बिटिया कुमार,राजा के सोहगबा॥

नीले रंग की घोड़ी और उसकी नीली लगाम भी है जिसमें सवार होकर दूल्हे जी चल रहे हैं। एक वन नाकने के बाद उन्हें दूसरा वन मिला और तीसरे में मालिन की फुलवारी मिली। हे राजकुमार! तुम किसी बाग बगीचे में उतरकर आराम करोगे या फिर मालिन की फूलों की बगिया में?
न तो हम किसी बाग बगीचे में उतरेंगे, न ही किसी मालिन की फूलों की बगिया में, बल्कि हम तो अब उसी घर में उतरेंगे जिनने अपनी क्वारी बेटी का विवाह रचाया हुआ है।

सोहाग गीत कन्या

साँकर खोरिया सिहुड़बा कय बारी
बिच बिच बमुरे कय डार, रानी के सोहगबा।
ओही होइके निकरे हैं दुलारे दुलेरुआ
कि कलँगी अरझ गई डार, रानी के सोहगबा॥
थोरि रुक कलँगी निकारा मोरी धनिया
पय अब न अउब ससुरार, रानी के सोहगबा।
कइसे के कलँगी निकरउ मोरे स्वामी
कि देखिहय नगरबा के लोग, रानी के सोहगबा॥
माया मोरी देखिहइ बबुल मोर देखिहइ
कि हसिहइ नइहरबा के लोग, रानी के सोहगबा।

सँकरी-सी गली है, वहाँ थूहा और बबूल की बाड़ लगी हुई है। जहाँ से दूल्हे जी जा रहे हैं अस्तु उनकी कलँगी उस बाड़ में उलझ जाती है। वे अपनी नव ब्याहता से कहते हैं कि तुम मेरी उलझी हुई कलँगी को निकाल दो, मैं अब कभी ससुराल नहीं आऊँगा।

उसकी नव ब्याहता बोली कि स्वामी मैं अगर कलँगी निकालूँगी तो मेरे गाँव के लोग हँसेंगे, क्योंकि मेरे माता-पिता और गाँव के सभी लोग देख रहे हैं, इसलिए मैं यह नहीं करूँगी।

द्वारचार गीत

कहना केर बरतिहा रे सब करियय करिया।
कहना केर देखइया रे सब गोरियय गोरिया॥
नगउध केर बरतिहा रे सब करियय करिया।
रीमा केर देखइया रे सब गोरियय गोरिया॥
आजा न लाए बाजा न लाए,
पीठ बजाबत आए रे सब करियय करिया॥

यह कहाँ की बारात आई है, जिसके सारे बाराती काले ही काले रंग के हैं! साथ ही यह बारात को देखने वाले कहाँ के लोग हैं जो सभी गोरे और खूबसूरत हैं। यह नागौद की बारात आई है जिसके सभी लोग काले हैं और रीवा से आए, सभी लोग गोरे ही गोरे हैं। यह कैसे बाराती हैं जो बाजा वगैरह नहीं लाए, सब अपनी पीठ बजाते हुए ही आए हैं!

भोजन करते समय यह गारी गाई जाती है, इसलिए इसे जेउनर गारी कहा जाता है।

जेउनर गारी

कुत्ता पाल ल्या हो समधी जजमान कुत्ता पालल्या।
जइसय कुत्ता कय पीठ, ओइसय आगरे कय छीट।
कुरथा पहिर ल्या।
कुरथा पहिर ल्या हो समधी जजमान कुरथा पहिर ल्या॥
जइसय कुत्ता कय पूछ ओइसय समधी की मूछ।
मूछय टेय ल्या।
मूछय टेय ल्या हो समधी जजमान मूछय टेय ल्या।

ओ समधी यजमान तुम कुत्ते को पाल लो, क्योंकि जिस प्रकार कुत्ते की पीठ है, उसी प्रकार आगरे की बुनी छींट होती है, अस्तु तुम उसका कुर्ता पहन लो। जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ होती है, उसी प्रकार तुम्हारी मूँछे हैं अस्तु समधी यजमान तुम मूँछ चढ़ा लो।

बारात के दूसरे दिन दूल्हा को कलेबा कराया जाता तो उस पर एक हास-परिहास की गारी गाई जाती है।

पउड़ बिछाने का गीत

हाथ म सेंधउरी लीन्हे मुँह बीरा पान हो की,
बिना पउड़ ढेरिया मोरी चउके न जाय हो।
यतना जो सुनि पामय ससुरा फलने रामा,
मूड़े कय मुरइठी लइके पुउड़ मा बिछामय हो।
यतना जो सुनय ननदोइया फलने रामा,
कांधा कय अगउछी लइके पउड़ म बिछामय हो।
यतना जो सुनि पामय देवरा फलाने रामा,
हाथ कय रूमलिया लइके पउड़ म बिछामय हो॥

हाथ में सिधोरा लिए हुए और मुँह में पान का बीड़ा चबाए बेटी खड़ी है। पर वह चौक में तभी जाएँगी, जब रास्ते में कपड़ा बिछा होगा। जब उसके ससुर को पता चला कि रास्ते में कपड़ा नहीं बिछा तो उन्होंने अपने सिर की पगड़ी ही बिछा दी। जब उनके ननदोई को पता चला कि पउड़ में कोई कपड़ा नहीं बिछा तो उसने अपने कांधे की साफी लेकर ही बिछा दी। जब देवर को पता चला कि भाभी बिना कपड़ा बिछे नहीं आ रही तो उसने अपने हाथ की रूमाल ही बिछा दी।

विवाह गीत

मय त खेलत रहेंव बारू रेत मुदरिया मोरी होइन गिरी।
मय त ससुरय जगायव आधीरात, ससुइया गारी देत उठी।
मय त खेलत रहेंव बारू रेत मुदरिया मोरी होइन गिरी।
मय त जेठय उठायव आधी रात जेठनिया गारी देत उठी।
मय ता खेलत रहेंव बारू रेत मुदरिया मोरी होइन गिरी॥
में बालू रेत में खेल रही थी अस्तु मेंरी मुँदरी वहीं गिरी होगी।
मैंने जब ससुर जी को अर्ध रात्रि में मुँदरी खोजने के लिए जगाया तो मेरी सासू गाली देते हुए उठ बैठी। मेरी मुँदरी वहीं गिरी होगी, जहाँ मैं बालू रेत में खेल रही थी। मैंने जब जेठ जी को मुँदरी खोजने के लिए जगाया तो जेठानी गाली देते हुए उठ बैठी।

कन्यादान गीत

थारी रे काँपइ गेडुआ रे काँपय,
काँपय कुसा केरी डोर।
मड़ए तर कॉपय बपबा फलाने राम
देत कुमारी क दान।
अब नहि हथबा सकेल्या मोरे बापू,
होय धरम केर जून।
अच्छे अच्छे भड़बा पखारा मोरे बापू,
आय धरम केर जून।
दान देते समय थाली लोटा और कुश की नोक काँप रही है। मंडप के नीचे कन्या के पिता भी बेटी को दान करते काँप रहे हैं। अब पिता जी अच्छे-अच्छे बर्तन दान में दीजिएगा। दान की बेला में हाथ मत सकेलिएगा! जब बारात विवाह करके अपने गाँव लौटकर जाती है तो वर-वधू की परछन होती है।

विवाह का सुवहाग गीत

चिरई त सोय गई चुनगुन सोयगे,
सोये है गाँव केर लोग, रानी के सोहगबा।
एक नहि सोए उय बिटिया के आजा
जेहि घर बिटिया सयान, रानी के सोहगबा।
चिरई तो सोय गई चुनगुन सोयगे,
सोय गे है गाँव केर लोग, रानी के सोहगबा।
एक नहि सोये उय बिटिया के बपबा,
जिन घर बिटिया सयान, रानी के सोहगबा।
चिरई त सोय गई चुनगुन सोय गे,
सोये है गाँव केर लोग, रानी के सोहगबा।
एक नहीं सोये हैं बिटिया के काका,
जेकर भतीजी सयान, रानी के सोहगबा।
चिरई त सोय गई चुनगुन सोय गे,
सोया गे हैं गाँव केर लोग, रानी के सोहगबा।
एक नहीं सोये हैं बिटिया के भइया,
जेहि घर बहिनी सयान, रानी के सोहगबा।
चिड़िया पक्षी बसेर सभी सो गए, गाँव-शहर के लोग भी सो गए, पर एक सयानी लड़की के बाबा हैं जिनको नींद नहीं आ रही। चिड़िया पक्षी सभी सो गए पर बेटी के पिता नहीं सोए जिनके घर में बेटी सयानी है। चिड़िया पक्षी और शहर के सभी लोग सो गए, किन्तु बेटी के भाई अभी तक नहीं सोए जिनके घर में बहन सयानी है।

परछन गीत

बियाह लाए रघुवर जानकी का,
अपने क लाए हाथी अउ घोड़ा।
सजाय लाए म्याना जानकी का।
बियाह लाए रघुवर जानकी का॥
अपने क लाए जामा अउ जोड़ा ,
सियाय लाये चुनरी जानकी का।
बियाह लाए रघुबर जानकी का।
अपने क लाये हाथे क कंगन,
बियाह लाये बेंदिया जानकी का।

रामचन्द्र जी, जानकी को ब्याह कर लाए हैं। वह अपने लिए तो हाथी घोड़ा लाये हैं, किन्तु जानकी को पालकी में बिठला कर लाए हैं। वे अपने लिए तो जामा जोड़ा लाए हैं, पर जानकी जी के लिए चुनरी लाए हैं। वह अपने लिए तो कंगन लाए हैं, किन्तु जानकी के लिए माथे की बेंदी लाए हैं।

धीरे किहा परछनिया हो, राम लाए दुलनिया।
पहिली परछनिया सासु रानी निकरीं,
धीरे किहा परछनिया राम लला लाए दुलनिया।
दूजी परछनिया काकी उनकी निकरीं,
धीरे किहा परछनिया राम लला लाए दुलनिया।
तीजे परछनिया फूफू उनकी निकरीं,
धीरे किहा परछनिया राम लला लाए दुलनिया॥
चउथी परछनिया आजी उनकी निकरीं,
धीरे किहा परछनिया हो राम लला लाए दुलनिया।

धीरे-धीरे परछन करो क्योंकि राम लला दुल्हन ब्याह कर लाए हैं। पहली परछन तो सासू रानी करें क्योंकि राम लला दुल्हन ब्याह कर लाए हैं। दूसरी परछन उनकी काकी करे, तीसरी परछन बुआ और चौथी परछन उनकी दादी करें क्योंकि राम लला दुल्हन ब्याह कर लाए हैं।

डोला मुदाई का गीत

लाला दइदे फुफुइया क नेग फुफुइया गइल छेके खड़ी ।
बुआ का नेग दे दो क्योंकि वह दरवाजे को छेक कर खड़ी है?
लाला खोल कमरिया रे में देखउ तोर धना।
धउ सामर हय धउ गोर, में देखउ तोर धना।

दूल्हे जी अब पालकी का दरवाजा खोलो तो देखें कि तुम कैसी दुल्हन ब्याह कर लाये हो? वह साँवली या गोरी कैसी है?

उसके बाद कोहबर गीत गाया जाता है।

कोहबर गीत

भर दुलहिन तय पइला रे, तोर बाप धोधइला रे।
दुल्हन अब पैला को भरो, तुम्हारा बाप झूठा है।

इस तरह कोल महिलाएँ अनेक तरह के संस्कार गीत गाती हैं।

बच्चों के खेल

बच्चे चाहे जिस समुदाय के हों पर खेल-कूद का उनसे बड़े निकट का सम्बंध होता है। कोई खेल बच्चों को माता पिता नहीं सिखाते? बल्कि तमाम तरह के खेल भी उनमें परम्परा से ही आते हैं, जिन्हें छोटे बच्चे खेलते-खेलते ही बड़े बच्चों से सीखते रहते हैं।

हमारी टीम ने जब छोटे-छोटे बच्चों और किशोर वय के कोल बालकों से पूछताछ की तो उनसे कई तरह के खेलों की जानकारी मिली जिनमें कुछ तो बच्चों ने मौखिक बताया एवं कुछ उनके द्वारा खेल कर भी दिखाए गए। लेकिन बुजुर्ग कोलों का कथन है कि बीते समय के वाले कुछ खेल अब समाप्त भी हो गए हैं।

उनके द्वारा बताए एवं दिखाए गए कुछ खेलों का विवरण इस प्रकार है -

चंदा गोटी

इस खेल में दो या चार बच्चे साथ-साथ खेलते हैं। जब चार लोग खेलते हैं तो ठीक सामने बैठा जोड़ी कहलाता है और अगल-बगल बैठे लोगों की दूसरी जोड़ी होती है। यह दो खिलाड़ियों की बनी जोड़ी एक दूसरे की सहायक होती है और अगल-बगल बैठी विरोधी।

इस तरह पंद्रह प्रकोष्ट के इन चंदा गोटी के चौकोरों में खेल रहे चारों लोग अपने सामने बने खाने में चार-चार गोटी लेकर बैठते हैं। पर सभी की चारों गोटी अलग-अलग होती हैं, ताकि पहचानने में दिक्कत न हो। वह गोटी अलग-अलग रंग के कंकर-पत्थर, खपरे के छोटे टुकड़े या केमाच नीम आदि किसी फल के बीज के रूप में भी हो सकती है। इन चौकोरों में हर चौथे खाने में क्रास का चिन्ह बना रहता है, जहाँ पहुँच जाने पर गोटी नहीं मारी जा सकती। पर अंक जानने के लिए कौड़ी का उपयोग होता है। लेकिन यदि कौड़ी उपलब्ध न हो तो लकड़ी के फाड़े हुए चार छोटे-छोटे टुकड़े या केमाच के फाड़े हुए बीज भी लिए जा सकते हैं जिनमें चित्त और पट्ट स्पष्ट दिखे। यह अंक चित्त पड़ने वाली कौड़ी या लकड़ी के टुकड़ों के आधार पर गिने जाते हैं, जो 1-2-3 होते हैं। पर अगर समूची कौड़ी पट्ट हो जाय तो उसमें 4 अंक और अगर चित्त हो जाय तो 8 अंक मिल जाते है। चंदा के क्रास स्थान में पहुँच जाने पर गोटी नहीं मारी जाती किन्तु अगर क्रास के आगे 1-2-3 आदि प्रकोष्ट में रही और विपक्षी जोड़ी की गोटी वहाँ पहुँच गई तो वह मर कर अपने मूल स्थान पर चली जाती है।

परन्तु यदि उस खिलाड़ी की दो गोटी का जोड़ा साथ में हो तो उन्हें नहीं मारा जा सकता। इसी तरह सामने वाले की जोड़ी की गोटी भी यदि किसी खाने में साथ में हो तब भी वह गोटी नहीं मारी जा सकती। पच्चीस खानों के इस चंदा गोटी खेल में ठीक बीच में एक खाने में पहुँच कर सभी गोटी पकती हैं। पर अगर एक जोड़ी की गोटी पक गई तो उसके कौड़ी डालने पर आए अंक उसके जोड़ी की गोटी पकाने में काम आते हैं।

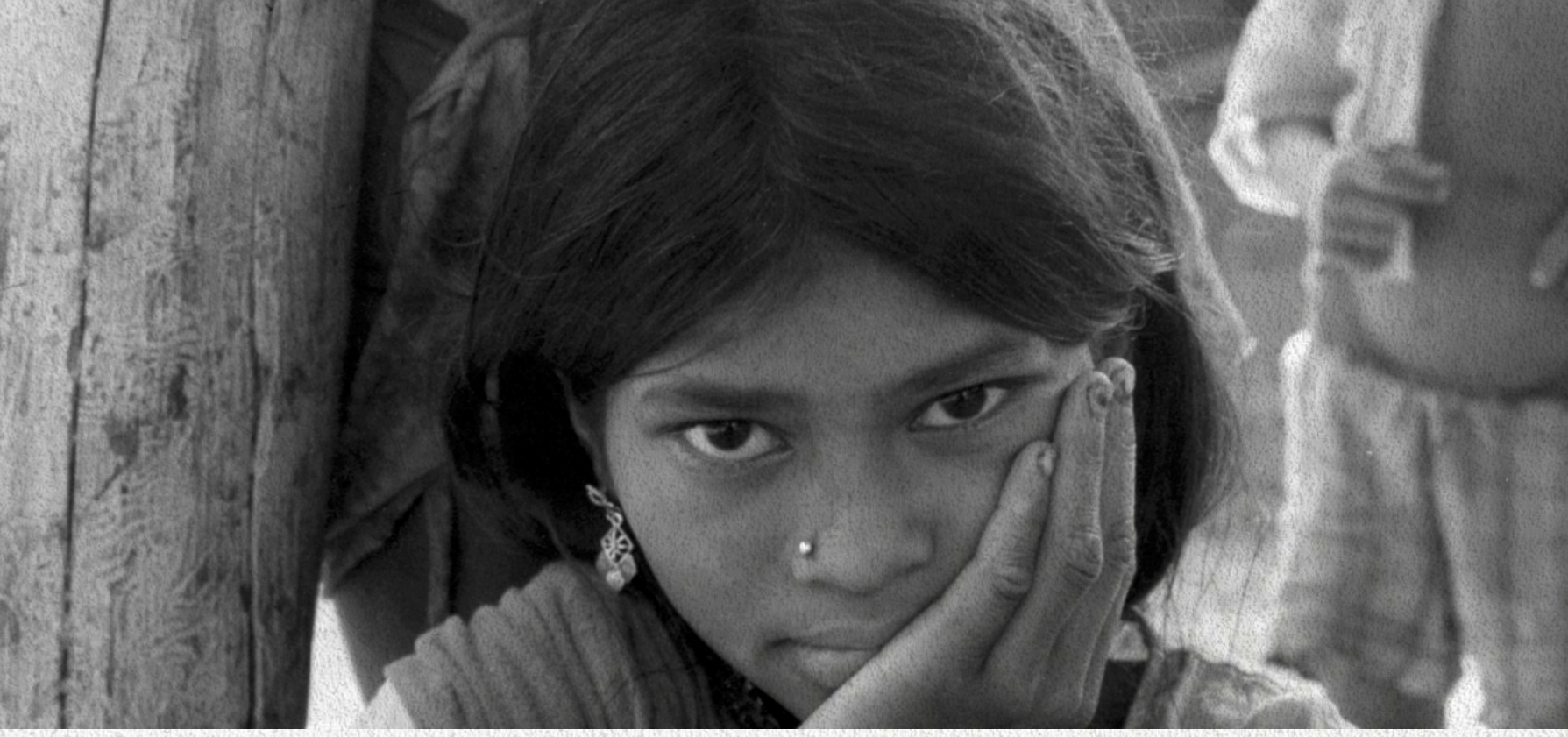

घोखबल

इस खेल को दो बच्चे ही खेलते हैं जिसमें जमीन में एक इंच गहरे दो इंच चौड़े गड्ढे बना लिये जाते हैं और उनमें पाँच-पाँच छोटी-छोटी गोटियाँ रख दी जाती हैं। फिर एक बालक खेल शुरू करते हुए एक गड्ढे की पाँचों गोटियाँ उठा एक-एक गोटी प्रत्येक गड्ढे में रखता जाता है और जहाँ गोटी समाप्त हुई तो दूसरे गड्ढे की गोटी लेकर अपनी चाल चलता रहता है। पर चाल चलते-चलते जब गोटी समाप्त हो जाती है और उसके आगे एक गड्ढा खाली रह जाता है तो उसके आगे वाले गोटियों से भरे गड्ढे की सारी गोटियाँ उसकी हो जाती हैं।

उसके बाद दूसरा बालक गोटी की चाल चलना शुरू करता है और गोटी समाप्त के आगे खाली गड्ढे के बाद की गोटी उसकी भी हो जाती है। इस तरह साठ गोटियों का यह खेल तब तक चलता रहता है, जब तक पूरी गोटियाँ समाप्त नहीं हो जातीं। बाद में दोनों खिलाड़ी अगला खेल खेलने के लिए अपनी-अपनी प्राप्त की हुई गोटियाँ उन्हीं गड्ढों में रखते हैं। पर अगर किसी की गोटी अपनी ओर बने छ: गड्ढों से अधिक सामने वाले गड्ढों की ओर भरने के लिए चली गई तो वह उसका बधुआ गड्ढा कहलाता है और चाल चलते समय जितनी गोटी उसके उस गड्ढे में जाएँगी वह उसकी ही कहलाएँगी। लेकिन अगर उसकी उस गड्ढे से अधिक 1-2-3 या 4 गोटियाँ हैं और बाकी गोटी दूसरे से लेकर पाँच की संख्या पूरी की गई है तो वह गड्ढा सज्झा कहलाएगा एवं जितनी गोटी पाँच की संख्या पूरी करने के लिए दूसरे खिलाड़ी की आईं हैं, उतने अनुपात का वह हिस्सेदार होगा। यह गड्ढे कैसे मालूम पड़े कि बधुआ या साझा हैं? तो उनमें गोलाकार एक घेरा बना दिया जाता है।

इस तरह यह खेल तब तक चलता रहता है जब तक एक खिलाड़ी पूरी गोटियाँ नहीं जीत लेता?

गढ़ा गेंद

यह दो खिलाड़ियों के बीच का खेल होता है जिसमें दोनों के पास एक-एक डंडा एवं दोनों के बीच एक कपड़े की बनी और सुतली से कसी गेंद होती है। साथ ही डंडे से गेंद को मारने वाले खिलाड़ी के लिए चार इंच चौड़ा एवं एक इंच गहरा गड्ढा भी बनाया जाता है जिसमें डंडे को सीधा खड़ा रख खड़े होने पर वह फाउल नहीं माना जाता। दाम किसे आगे देना है, इसके लिए दोनों अपने-अपने डंडों को घुमाकर फेंकते हैं। फिर जिसका डंडा पीछे रह जाता है, उसे ही दाम देना पड़ता है। इस तरह टॉस जीता खिलाड़ी अपने डंडे से गेंद को मारता है और जहाँ तक गेंद जाता है तो दाम देने वाला खिलाड़ी उसे लेने के लिए दौड़ता है और वहीं से गेंद को उस खिलाड़ी के ऊपर मारता है, जिसे वह डंडे से रोक लेता है। पर अगर गेंद उसके शरीर से छू जाता है तो फिर दाम उसे ही देने पड़ते हैं।

इस तरह दाम देने वाला खिलाड़ी चाहता है कि गेंद नजदीक ही रहे ताकि वह उसे नजदीक से तुक कर अपना दाम उतार सके। लेकिन दाम लेने वाला चाहता है कि वह गेंद को डंडे मारकर दूर कर दे। ऐसा करने के लिए जब दाम देने वाला खिलाड़ी दूर से गेंद मारता है और वह उसके आस-पास ही आकर रुकता है तो वह दाम लेने वाला खिलाड़ी गढ़े को छोड़ गेंद मारने के लिए कुछ दूर भी चला जाता है, पर गेंद को मार पुन: तुरन्त ही गढ़े में आ जाना पड़ता है। पर अगर इस बीच उसके गढ़े में दाम देने वाला खिलाड़ी कब्जा कर लेता है तो फिर उसे ही दाम देने पड़ते हैं।

अमली क डंडा

इस खेल में एक खिलाड़ी दो ढाई फीट के डंडे को हाथ से घुमाकर जोर से फेंकता है और जो दाम दे रहा है, वह उसे लाने के लिए दौड़ता है एवं बाकी 4-5 खिलाड़ी पेड़ पर चढ़ जाते हैं। जब वह डंडे को लाकर पेड़ के नीचे रख उन्हें छूने के लिए पेड़ पर चढ़ता है तो वे सभी पेड़ से उतर या कूद कर उस डंडे को छू कर एक ओर खड़े हो जाते हैं। पर यदि कोई खिलाड़ी/बालक उस डंडे को नहीं छू पाता और दाम देने वाला उसे छू लेता है तो दाम उसके ऊपर चला जाता है और तब उसे दाम देना पड़ता है।

इस तरह जब तक खिलाड़ी चाहते हैं, यह खेल इसी तरह चलता रहता है। पर इसकी शुरूआत करते समय सभी खिलाड़ी पहले डंडा फेंकते हैं और चिन्ह लगाते जाते हैं। किन्तु जो खिलाड़ी सबसे कम डंडे को फेंक पाता है, उसे ही शुरू में दाम देना पड़ता है।

रामतूल

इस खेल में जमीन में रामतूल के कोष्ट बनाकर 18-18 गोटी लेकर दो लोग खेलने के लिए बैठते हैं और इस गोटी मारने व हार-जीत के खेल को खेलते हैं।

अखमुदला

इस खेल में 5-6 बच्चे तक होते हैं जिसमें एक बालक की आँख मूँद दी जाती है और बाकी लोग छिप जाते हैं। हाँ-बोलने पर वह उन्हें छूने के लिए दौड़ता है। अगर किसी बालक को छू लेता है तो दाम उसके ऊपर चले जाता है।

गुड़न्ता

इस खेल को तीन-चार खिलाड़ी साथ-साथ ही अपने डंडों को लेकर खेलते हैं। सबसे प्रथम सभी लोग पहले अपने-अपने डंडों को गुड़ंतते हैं। पर इस क्रिया में जिसका डंडा सबसे पीछे रह जाता है, उस डंडे पर बारी-बारी से सभी खिलाड़ी चोट करते हैं जिसे कीचना कहा जाता है। जब तक कीचते समय उसका डंडा उस डंडे के पीछे अपनी तरफ रहता है, तब तक वह कीचते रहने का अधिकारी होता है, किन्तु डंडा बाहर की ओर हो जाने पर उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। इस तरह दूसरा और तीसरा भी तब तक कीचने का अधिकारी रहता है, जब तक उसका डण्डा उस डण्डे से बाहर की ओर नहीं चला जाता।

पुलू लुलू

इस खेल में सात से आठ खिलाड़ी होते हैं जो एक ही कतार में बैठते हैं, किन्तु एक का मुँह सामने तो दूसरे का विपरीत दिशा की तरफ होता है। फिर सबसे किनारे की ओर बैठा खिलाड़ी दाम देता है और खिलाड़ियों की उस कतार का चक्कर लगाता हुआ किसी एक बैठे हुए खिलाड़ी के पीछे जा 'पुलू लुलू' बोल देता है। उसके ऐसा कहने पर उक्त खिलाड़ी चक्कर लगाने लगता है और खुद उसी के द्वारा खाली किये स्थान पर बैठ जाता है।

इस तरह 'पुलू लुलू' कह कर बैठने और दाम देने और कतार में बैठे लोगों के चक्कर लगाने का यह क्रम घण्टों चलता रहता है।

पच गोटबा

इसे खेलने के लिए खपरे को फोड़ कर पाँच चपटी गोल आकार की गोट बनाई जाती हैं, जिन्हें हाथ से उछाल कर लोका जाता है। उनमें जो खिलाड़ी सबसे अधिक बार पूरी गोटी लोकता रहता है, वह विजेता माना जाता है, किन्तु जिसकी गोटी शीघ्र ही जमीन में गिर जाती है, वह हारा हुआ खिलाड़ी माना जाता है।

हुडुडुआ

यह कबड्डी की तरह का एक खेल है जिसमें उसी की तरह ही बराबर-बराबर जोड़ी होते हैं और बीच में एक सीमा रेखा भी। किन्तु पीछे और बगल में फाउल करने के लिए कोई सीमा नहीं होती। भाखने जाने पर विपरीत जोड़ी अगर उसे पकड़ लेते हैं और भाख टूटने तक पकड़े रहते हैं तो वह मारा हुआ जोड़ी माना जाता है। पर अगर उनसे छुड़ा कर या उनको लिए हुए वह बीच की सीमा रेखा को छू लेता है तो जितने लोगों ने उसको पकड़ा था, वह सभी लोग मारे जाते हैं। इसमें जब कोई खिलाड़ी दूसरी टोली के पाले में जाता है तो वह कुछ गीत गाता हुआ जाता है जिसे भाखने जाना कहा जाता, और भाखने के यह बोल होते है।

तुआ न तनमन बोई गय धान।
खाय सुआ मटकाबय कान॥
हुरछे हर छंगे रंगे,
बादला पतंगे रंगे।
आम छू आम छू,
काले बदाम छू।
हुड हुड कारव, बाघ बिलारव, बाघ के छउना धरे, पय पकड़े त दय न मारे
पकड़े त दय ना मारे।

गिप्पी गेंद

यह चार से छ: खिलाड़ियों के बीच खेला जाने वाला खेल है, जिसमें दो या तीन की जोड़ी होती है। इस खेल में कपड़े की सुतली से कसी एक गेंद और खपरे की फोड़ कर बनाई गई सात गिप्पियाँ लगती हैं जिन्हें खेल खेलते समय एक के ऊपर एक सातों को रख दिया जाता है। खेलते समय प्रथम खिलाड़ी गेंद से मारकर पहले उन गिप्पियों को गिराता है और जब दूसरा खिलाड़ी गेंद लेने चला जाता है और वहाँ से अपने साथियों को गेंद देता है। इस तरह गेंद के आने के पहले तक गिप्पी वाले उन्हें पुन: एक के ऊपर एक रख देते हैं। पर यदि उसके द्वारा मारी गई गेंद को दूसरा खिलाड़ी लोक लेता है। या गिप्पी रखते समय आकर उसके शरीर में तुक कर गेंद मार देता है तो प्रथम खिलाड़ी के बजाय गेंद मारकर गिप्पियों को गिराने का हक दूसरे खिलाड़ी की टीम के पास चला जाता है। इस तरह गिप्पी गिराने, उन्हें एक के ऊपर एक रखने और गेंद से मार कर बाजी जीतने का यह खेल चलता रहता है।

शैला का खेल एवं शैला गीत

यह खेल छ: या आठ खिलाड़ियों द्वारा हाथ में एक-एक हाथ के दो डंडे लेकर खेला जाता है। खिलाड़ी पहले अपने हाथ के दोनों डंडों को आपस में मार कर 'खट्ट' की आवाज निकालेंगे और फिर अपने अगल-बगल गोल घेरे में खड़े लोगों के डंडों में मारेगा। इस खेल को प्राय: बरसात खत्म होने और ठंडी आने के पहले क्वार कार्तिक मास की उजेली रात्रि में खेला जाता है और गीत भी गाये जाते हैं।

यह खेल क्वार में वर्षा रुक जाने के समय मुख्यत: वर्षा के आह्वान का होता है जिसमें युवा और प्रौढ़ सभी शामिल होते हैं। कोल समुदाय की मान्यता है कि यदि वर्षा रुक जाये और शैला खेला जाय तो रूठे हुए बादल लौट कर पुन: वर्षा करते हैं। गीत इस प्रकार होते हैं-

जूझय ना रे, शइला म शइला रे जूझय ना।
अउ मिलय न ताल म ताल।
जोड़ी हेराय गा रे लस बइड़ा,
लत खउदन कचरो जाय।
ओनय अउती रे,
कारी बदरिया रे ओनय अउती।
अउ बरखन बाले मेघ।
टूट न परते रे पापिन पर,
मोर शइला पियासा जाय।

इस तरह बहुत सारे गीत गाते हुए घण्टों तक यह शैले का खेल चलता रहता है।